RNI No. UTTHIN/2016/71922

मूल्य 20 रुपए

कविकुंभ

वर्ष 01 • अंक 11 • अक्तूबर 2017

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • बिहार • झारखंड • प.बंगाल • पंजाब • हिमाचल • जम्मू-कश्मीर • महाराष्ट्र • गुजरात

शब्द-संपादकीय

मन पर बैठीं बड़प्पन की बातें

हमेशा से ऐसा रहा है। कुछ लोग सिर्फ अपनी बात करते हैं। उनका बड़प्पन मन पर बैठ जाता है, जिनकी चर्चाओं में सबकी बात होती है। बात 'कविकुंभ' की है। हमारे सिर-माथे तो सबकी बात बड़ी है, बड़प्पन की है। कुछ बातें मन पर बैठ गई हैं। आज किंचित अपनी बात उनके शब्दों में कर लेते हैं, जो 'कविकुंभ' की बातें कर रहे हैं। हम उनके आभारी हैं। वह प्रशंसा नहीं, हमे कठोर चुनौतियों से समय रहते आगाह कर रहे हैं। उनकी बातें शब्दशः -

मुरादाबाद (उ.प्र.) से देश के प्रतिष्ठित नवगीतकार डॉ. माहेश्वर तिवारी ने लिखा- 'कविकुंभ' की जय-यात्रा सफल हो। पत्रिका-परिवार के संकल्प का धीरज और अधिक बलवान हो। पत्रिका-प्रबंधन की देशव्यापी यात्रा किसी अन्य ऐसी ही यात्रा से कम नहीं है।

अलवर (राजस्थान) से जाने-माने आलोचक डॉ. जीवन सिंह ने लिखा - 'कविकुंभ' सिर्फ कवि-साहित्यकारों की नहीं, आम हिंदी पाठकों की बहुत कम कीमत पर उपलब्ध ऐसी स्तरीय पत्रिका है, जिसके प्रयासों और सम्पादकीय नजरिए का मैं स्वागत करता हूँ।

रायपुर (छत्तीसगढ़) से कवि-व्यंग्यकार गिरीश पंकज ने लिखा - हिंदी-उर्दू दोनों को साथ लेकर चलने की कविकुंभ की अभिनव पहल, सच कहूँ तो कविता पर केंद्रित ऐसी पत्रिका हिंदी में अब तक नहीं निकली है। यह अभूतपूर्व है। पत्रिका दीर्घजीवी हो।

कटनी (म.प्र.) से जनगीतकार कवि राम सेंगर ने लिखा - 'कवि कुम्भ' के आने से हमें खूब खुशी हो रही है। मिशन सफलता की सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ता जाए। आभार शब्द छोटा है।

गोंदिया (महाराष्ट्र) से कवयित्री कीर्ति अग्रवाल ने लिखा - 'कवि कुंभ' साहित्य के संरक्षण का आ' 'ान कर रही है। इसका हिंदी के गंभीर साहित्यकारों की ओर से भी खुलकर स्वागत किया जाना चाहिए।

लखीसराय (बिहार) से राजेंद्र राज ने लिखा - 'कविकुंभ' में देश के बड़े कवि-साहित्यकारों की पठनीय सामग्री के साथ नवगीत-गजल, संस्मरण, साक्षात्कार, बहस सब कुछ लीक से हट कर है।

अहमदाबाद (गुजरात) से कवि सम्पत लोहार ने लिखा - 'कविकुंभ' के शब्द किसी भी रचनाकार को सुखद संभावना और गहरे आत्मविश्वास से भर देते हैं। इसमें नवोदितों को और स्थान मिले।

दिल्ली से कवि ओम प्रकाश कल्याणे ने लिखा - इतनी कम कीमत पर इतनी अच्छी पत्रिका उपलब्ध कराना साहित्यिक तपस्या है। नवोदित कवियों को प्रोत्साहन जारी रहे।

रुड़की (उत्तराखंड) से कवि कृष्ण सुकुमार ने लिखा - 'कविकुंभ' पूर्णतः कविता केन्द्रित एक संपूर्ण मासिक पत्रिका लगती है। हिंदी पट्टी के सभी राज्यों में लगातार नगर-नगर जाकर रचनाकारों से संपर्क और संवाद सराहनीय है।

आमा खडकालय, दुर्गागढ़ी, प्रधाननगर, दार्जिलिंग से हमारे आत्मीय बिर्ख खडका दुवसेर्ली ने आगाह किया - अप्रैल-मई अंक में कवि गोपाल सिंह नेपाली की तस्वीर प्रस्तुत करने में भूल हो गई है। (हमने सुधारकर क्षमा याचना की)

अलवर (राजस्थान) से प्रतिष्ठित गजलकार डॉ.विनय मिश्र ने लिखा - कविता के बहुवचन में शामिल सभी तरह के समकालीन काव्यरूपों से जुड़े सवाल, सरोकार, सन्दर्भ 'कविकुंभ' में महत्व पा रहे हैं। कविता पर पहली बार ऐसी पहल चौंकाती है।

बरेली (उ.प्र.) से कवि डॉ. लवलेश दत्त ने लिखा - वरिष्ठ कवि-मनीषियों को एक मंच पर लाना साहसिक और असाधारण है। यह पत्रिका निश्चित रूप से कवियों का कुंभ है।

जयपुर (राजस्थान) से दिल्ली दूरदर्शन के पूर्व निदेशक डॉ. चंद्रकुमार वरठे ने लिखा - 'कविकुंभ' के शब्द नई पीढ़ी को लुगदी-सृजन से भी सजग कर रहे हैं। प्रयास अनूठा लगता है।

बरेली (उ.प्र.) से कवि जय चक्रवर्ती ने लिखा- पत्रिका प्रबंधन के श्रम एवं संकल्प को प्रणाम। गुमनाम कवियों को विशाल पाठक वर्ग तक पहुँचाना सचमुच प्रशंसनीय है।

अलवर (राजस्थान) से गीतकार राम चरण राग ने लिखा- 'कविकुंभ में परम्परा और आधुनिकता का एक विहंगम कॉलाज देखकर मन चकित रह गया। दशकों से साहित्य का एक खाली कोना भरने लगा है। नये पाठक वर्ग का निर्माण हो रहा है।

गोरखपुर (उ.प्र.) से युवा कवि प्रेमनाथ मिश्र ने लिखा - हिंदी साहित्य में स्थापित सी होती जा रही मंचीय अपसंस्कृति के प्रति 'कविकुंभ' की चिंताएं सजग और सोचने को मजबूर करती हैं।

भोपाल (म.प्र.) से कवयित्री डॉ.प्रीति प्रवीण खरे ने लिखा - 'कविकुंभ' में प्रकाशित शब्द चिंतन-विमर्श के लिए प्रेरित करते हैं, विवश भी, साथ ही नई पीढ़ी का पथ-प्रदर्शन भी।

प्रतापगढ़ (उ.प्र.) से नवगीतकार अवनीश त्रिपाठी ने लिखा- 'कविकुंभ' सबसे अलग है। पत्रिका हाथ में आई तो बहुत अच्छा लगा।

धामपुर (बिजनौर) से साहित्यकार शंकर क्षेम ने लिखा- 'कविकुंभ' का कवि के घर पहुँचकर माहेश्वर तिवारी को सम्मानित करना गौरव पूर्ण रहा।

सतना (म.प्र.) से जगदीश तिवारी ने लिखा- 'कविकुंभ' पत्रिका साहित्यिक मानकों पर खरी उतर रही है। पाठक इसे लेकर पढ़ें जरूर।

लखनऊ (उ.प्र.) से कवयित्री संध्या सिंह ने लिखा - सलीके से सिलसिलेवार स्तरीय सामग्री साज-सज्जा, प्रस्तुति की कसौटी पर भी समृद्ध, पाठक को पूर्णतः संतुष्ट करती है।

-रंजीता सिंह

भाषा : हिंदी आवधिकता : मासिक

संपादक
रंजीता सिंह

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि
अफरोज आलम (कुवैत)
साकिब हुरानी (नेपाल)
फहीम अख्तर (यूनाइटेड किंगडम)

मुद्रक, प्रकाशक, *संपादक रंजीता सिंह द्वारा शिवगंगा प्रिंटिंग प्रेस, 20/1, नेताजी की गली, निकट तिलक रोड, देहरादून से मुद्रित तथा 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001 से प्रकाशित।

'कविकुंभ' संपर्क

डाक पता : रंजीता सिंह, 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) - 248001

E-mail: kavikumbh@gmail.com

मोबाइल : 7983168101 / 7409969078 / 7250704688

'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं।
प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

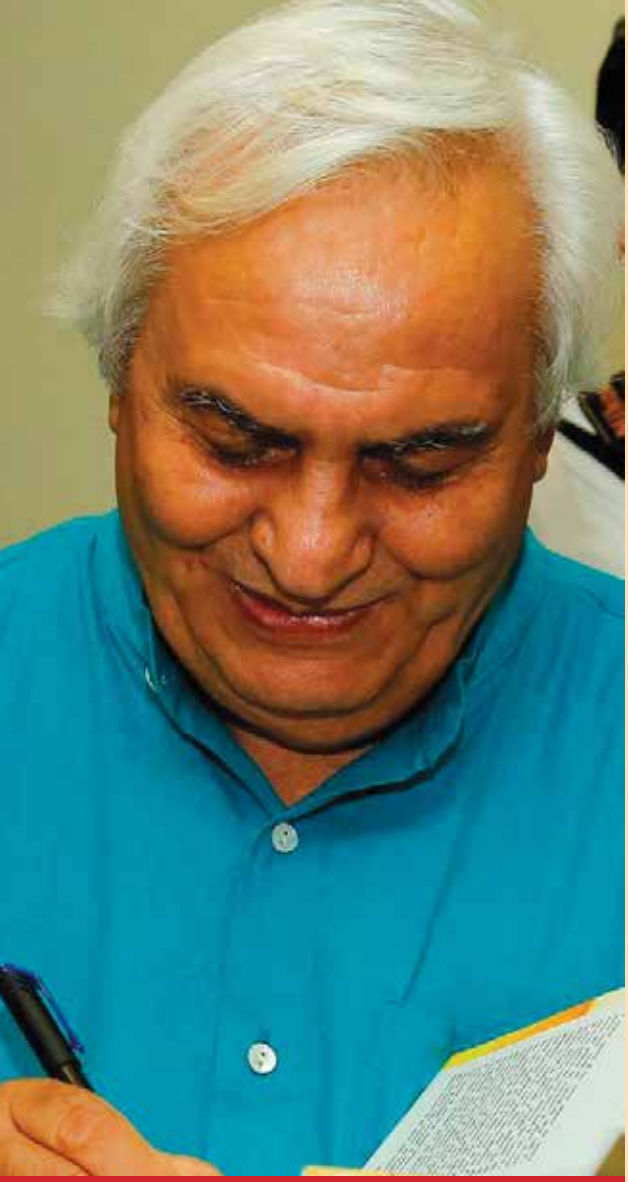

शब्दानुक्रम

* **शब्द-संवाद** में अनूठे अंदाज के विलक्षण कवि लीलाधर जगूड़ी से विशेष बातचीत : कसौटियां हों, और कविता न हो, तब क्या होगा? 9

* **शब्द-शिखर** में नवगीतकार भगवान स्वरूप सरस के कठिनतर जीवन और सृजन का पुनर्पाठ : साँप-सा हर आदमी को सूँघता है आदमी! 32

* **शब्दाभास** में 28 अक्तूबर, पुण्यतिथि पर विशेष : कवि से लेखक बन गए राजेंद्र यादव की बातें खरी-खरी 52

* **शब्दांकुर** में बाल-कविताओं के जादूगर बालस्वरूप राही पर वरिष्ठ कवि-लेखक दिविक रमेश के शब्द 56

* **शब्द-संस्मरण** में पुण्यतिथि 15 अक्तूबर पर विशेष : महाप्राण औरें महादेवी 57

* **शब्द-सुमन** में पूरन सरमा, मधुकर अष्ठाना, कृष्ण कुमार प्रजापति, प्राण शर्मा, श्रीधर आचार्य, हरिशंकर सक्सेना, ओरीना अदा, कुमार शैल, ब्रह्मजीत गौतम, प्रेमनाथ मिश्र, लवलेश दत्त 'पवन', राकेश कुमार श्रीवास्तव, राही भोजपुरी, मनोहर अभय, अनवर सुहैल, अम्बर रंजना पाण्डेय, ऋचा पाठक, अश्वनी राघव रामेन्दु, केशव शरण, मोहसिन खान, गिरीश कुमार, नीलकंठ, सारिका आशुतोष मूंदड़ा, नीलांशु रंजन, सीमा अग्रवाल

50

* **शब्द-सूचना** : राजस्थान में विश्व हिंदी सम्मेलन के बारह दिवसीय महाकुंभ के साथ दिल्ली, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल, हरियाणा, पंजाब, छत्तीसगढ़, झारखंड आदि राज्यों की साहित्यिक हलचल एवं साहित्यकार भोलानाथ मिश्र, कवि चावंड सिंह विद्रोही, शायर तश्ना आलमी, राजेंद्र मानव को विनम्र श्रद्धांजिल

36

स्मृति-शेष

मजरूह सुल्तानपुरी (1 अक्तूबर)

मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंजिल मगर
लोग आते गए और कारवां बनता गया।

वीरेंद्र मिश्र (1 अक्तूबर)

शब्द का संगीत चुप है कांपता हर गीत थरथर
और ऊपर उठ रही है तेज धारा।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (4 अक्तूबर)

उजली-कँकरीली तटी में धँसी, तनु धार लटी बल खाती जहाँ,
कविता वह हाथ उठाए हुए, चलिए कविवृंद, बुलाती वहाँ।

राम विलास शर्मा (10 अक्तूबर)

अब कहाँ यक्ष से कवि-कुल-गुरु का ठाट-बाट
अर्पित है कवि चरणों में किसका राजपाट

निदा फाजली (12 अक्तूबर)

कोशिश भी कर उम्मीद भी रख रास्ता भी चुन,
फिर इस के ब'अद थोड़ा मुकद्दर तलाश कर ।

गौरा पंत शिवानी (17 अक्तूबर)

कइया नी कइया , करिया नी करिया
करिए छिमा, छिमा मेरे परभू।

अदम गोंडवी (22 अक्तूबर)

चार दिन फुटपाथ के साये में रहकर देखिए
डूबना आसान है आँखों के सागर में जनाब

बहादुर शाह जफर (24 अक्तूबर)

हमने दुनिया में आके क्या देखा,
देखा जो कुछ सो ख़्वाब-सा देखा।

पुण्यतिथि

भगवतीचरण वर्मा (5 अक्तूबर)

मुरझाना है आओ खिल लें,
हम-तुम जीभर खुलकर मिल लें।

प्रेमचंद (8 अक्तूबर)

इतिहास में सब-कुछ यथार्थ होते हुए भी वह असत्य है,
कथा-साहित्य में सब-कुछ काल्पनिक होते हुए भी सत्य है।

इस्मत चुगताई (24 अक्तूबर)

किसी जमाने में मैंने भी गद्य-कविता
लिखी थी, जो बाद में जला दी।

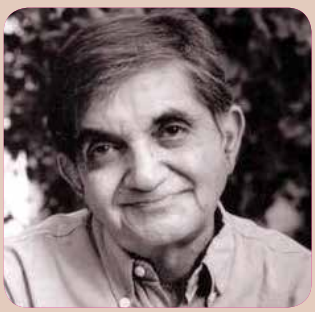

निर्मल वर्मा (25 अक्तूबर)

'क्या संपूर्ण निराशा में लिखना संभव है? काफ़्का आखिर
तक लिखते रहे- और वे लोग भी, जो मृत्यु को जानते थे।'

साहिर लुधियानवी (25 अक्तूबर)

गो हम से भागती रही ये तेज-गाम उम्र।
ख़्वाबों के आसरे पे कटी है तमाम उम्र।

श्रीलाल शुक्ल (28 अक्तूबर)

'कवि की बहुवर्णित अनुभूति भी गूंगे का गुड़ है,
जिसका रस वह अपने आप ही पाता है।'

राजेन्द्र यादव (28 अक्तूबर)

देखो, हमें कभी कुछ नहीं मिला,
हमारा असन्तोष, हमारा गिला।

अमृता प्रीतम (31 अक्तूबर)

'जहाँ भी आजाद रूह की झलक
पड़े, समझना वह मेरा घर है।'

कविता में भी चालाकी

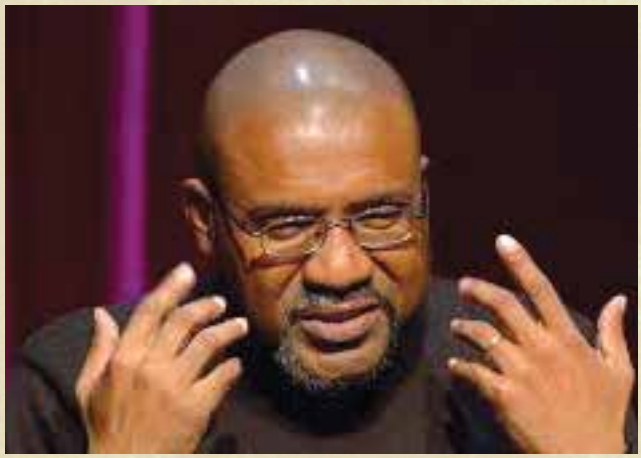

वर्धा विश्वविद्यालय के प्रो. सूरज पालीवाल लिखते हैं- 'कविता और उनके कवियों के लिए यह समय कठिन है। इसलिए कि अब कवियों ने कविता में भी चालाकी करनी शुरू कर दी है। कविता उनके लिये जीवन-मरण का प्रश्न नहीं बल्कि उपयोग, उपभोग और आगे बढ़ने का साधन बन गई है। हिंदी कविता ने अपने प्रारंभिक दौर में चारणों और रीतिकाल में राज्याश्रित कवियों के यहां इस प्रकार की दुर्गति देखी थी, यह दुर्गति सूचनाओं के संजाल और लूट की चमत्कारपूर्ण दुनिया में भी होगी, ऐसी उम्मीद न तो कविता को रही होगी और न उसके पाठकों को ही। ऐसे कवि अपनी निष्ठा से किनारा कर पुरस्कृत हो रहे हैं, बड़े घरानों से प्रकाशित हो रहे हैं और तमाम तरह की सुविधाओं के आकांक्षी बनकर मुलायम बने हुए हैं- जीवन में भी और कविता में भी। खरी-खरी कहने की कवियों जैसी आदत से बड़े अभ्यास के बाद मुक्ति पा ली है और अब निश्चिंत होकर शब्दों से खेल रहे हैं।

'ऐसे कठिन दौर में जो कवि ईमानदारी से कविता कर रहे हैं या आलोचक और संपादक की घालमेल वाली ठकुरसुहाती से दूर कविता रच रहे हैं- उन्हें खारिज किया जा रहा है। क्या सुविधा और साधनों की ललक कवियों को बड़ा बना सकती है? क्या कोई संपादक या आलोचक कवि को महान या छोटा बना सकता है? कहने को हमारे सामने कई उदाहरण हैं, जो अपने समय में महान बने रहे, पर बाद में किसी ने नहीं पूछा और अपने समय में उपेक्षित कर दिये कवि बाद में महान साबित हुए तथा कविता की धारा के विभिन्न स्त्रोतों की गंगोत्री वे ही साबित हुए। इसलिये केवल कवि ही नहीं बल्कि साहित्य की किसी भी विधा के लेखक को अपने मूल्यांकन की जल्दी नहीं होना चाहिये, जब अवसर आएगा, तब उनकी अपने समय के ताप में तपी रचना ही सिर चढ़कर बोलेगी। अधिकतर कवि मुझे अपने कविता संग्रह पढ़ने को नहीं देते। कवियों के इस ठंडेपन को मैंने भी कभी दूसरे अर्थों में नहीं लिया। न किसी कवि ने शिकायत की और न किसी प्रकार दबाव ही बनाया, इसलिये मैं भी सुखी, और वे तो पहले से ही सुखी थे।'

पाब्लो नेरूदा के शब्दों में 'कविता में अवतरित मनुष्य बोलता है कि वह अब भी बचा हुआ एक अन्तिम रहस्य है।' कविता के केन्द्र में सदैव मनुष्य और मनुष्य और मनुष्यता ही रहती है, इसलिए वह मनुष्य से जुड़े सभी सवालों को सम्बोधित करती है। धूमिल के शब्दों में 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।' कविता शून्य के प्रति एक प्रार्थना और अनुपस्थिति के साथ एक संवाद है। भगवान स्वरूप कटियार के शब्दों में कविता यात्राओं पर निकल जाने का निमंत्रण और घर की ओर लौटने की तड़प है। कविता मनुष्य होने की बुनियादी शर्त है और कविता मनुष्य की मातृभाषा है।' तो इस बार इस बोलते स्तंभ में 'कविता' पर प्रस्तुत है राजेश कुमार झा द्वारा अनूदित घाना के कवि क्वामे दावेस की कविता -

कविता लिखने से पहले
बेशर्म हवाओं से निकली आवाज की तरह,
कविता के बाहर आने के पहले,
सोना होता है कवि को एक करवट साल भर,
खानी होती है सूखी रोटी,
पीना पड़ता है हिसाब से दिया गया पानी।

कवि को डालनी होती है घास के ऊपर रेत,
बनानी होती है अपने शहर की दीवारें,
घेरना होता है दीवारों को बंदूक की गोली से,
बंद करनी होती है शहर में संगीत की धुन ।

कवि की जीभ हो जाती है भारी,
रस्सियां बंध जाती हैं बदन में,
अंग प्रत्यंग हो जाते हैं शिथिल।
उलझता है वह खुदा से-
पूछता है-क्या है कविता का अर्थ।

पड़ा रहता है एक सौ नब्बे दिनों तक,
बदलकर करवट दूसरी तरफ,
परिजनों को दिए घावों से हो जाती है छलनी देह,
मांगता है वह दया की भीख।
कविता लिखने से पहले,

कवि को करना पड़ता है यह सब,
ताकि सर्दियों के मौसम के बीच,
निकले जब वह सैर पर,
न हो चेहरे पर सलवटें,
आँखों में हो एक लाचार बेबसी-
जिसे लोग कहते हैं शांति,
अपनी गठरी में लिए बौराए हुए थोड़े से शब्द,
हरे रंग और उन आवाजों के बारे में,
जो बुदबुदाती हैं सपने में वारांगनाएं।

- लीलाधर जगूड़ी कई बातों में विलक्षण कवि हैं, अनूठे कवि भी। उनकी कविताओं का अपना अंदाज है, अपना व्यक्तित्व। उनकी दशकों पुरानी कविताओं में भी आज का टटकापन है। हिंदी कविता में ऐसी अलग-सी पहचान बड़ी मुश्किल से बन पाती है। उनकी कविता में पहाड़ या हिमालय नहीं, क्योंकि वह प्रकृति नहीं, मनुष्य के कवि हैं। उनकी साहित्य में उतनी चर्चा नहीं हो सकी, जितनी चाहिए थी। गढ़वाल-कुमाऊं विश्वविद्यालय तो जाने क्या कर रहे हैं - नामवर सिंह

- जगूड़ी उन थोड़े से कवियों में हैं, जो धूमिल के साथ हिंदी कविता के परिदृश्य में आए, पर उनकी कविताएं बिल्कुल अलग ढंग से अपनी पहचान बनाती हैं। यथार्थ के चटक बिम्बों का कल्पनाशील संयोजन उनके रचना कौशल का एक प्रमुख गुण है। उनमें एक सुपरिचित जीवन दृष्टि का स्थायित्व है। साथ ही नए अनुभवों को नई तरह से प्रस्तुत करने की चेष्टा - कुंवर नारायण

- लीलाधर जगूड़ी अपने समय, समाज, इतिहास और उसमें मनुष्य की यातना और दुर्दशा पर कविताएं लिख रहे हैं। खासकर मुझे उनकी कविता में जो बात आकर्षित करती है - प्रकृति से मनुष्य की तुलना की उन्होंने अद्भुत कल्पना की है। जगूड़ी कैसे सीधे समझाते हैं, जैसेकि प्रकृति को हम समझते हैं। राजनीति की बिडम्बनाओं में फंसे मनुष्य की दुर्गति पर भी वह बड़ी पैनी निगाह रखते हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि जगूड़ी का एक बड़ा पाठक वर्ग है- मैनेजर पांडेय

- लीलाधर जगूड़ी की कविताओं की विकास यात्रा को गौर से देखें तो पता चलता है कि उनकी कविता पर हिंदी आलोचना ने काम नहीं किया है। हालांकि आलोचना का पूरा परिदृश्य ही ऐसा है कि वहां इस दिशा में कोई उल्लेखनीय काम न तो हुआ है, न हो रहा है। काफी अलग और लगातार लिखना जगूड़ी की बड़ी विशेषता है। वे कई मायने में विरल कवि हैं - केदारनाथ सिंह

कसौटियां हों, और कविता न हो, तब क्या होगा? : लीलाधर जगूड़ी

कविता की कसौटी का खूंटा मत गाड़ो

कविता जैसी कविता से कविता में काम नहीं चलता। प्राचीन चिंतकों ने कविता के जितने दुर्गुण बताए हैं, वे आज कविता के मुख्य गुण बने हुए हैं। इसलिए कविता की कसौटी का खूंटा न गाड़ा जाए। कविता को एक प्रवहमान नदी रहने दिया जाय, वह अपना तल काटे, चाहे तट, उसे बहने दिया जाय। कविता का पानी खुद अपने किनारे और अपनी मझधारें बना लेगा। 'शब्द-संवाद' में इस बार विलक्षण कवि लीलाधर जगूड़ी से डॉ. अरविंद अवस्थी की विस्तृत बातचीत।

प्रश्न : 'साहित्य पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करना मूर्खता है' - मुक्तिबोध के इस कथन से क्या अर्थ निकालना चाहिए?

लीलाधर जगूड़ी : 'क्या' की जगह मैं कहूंगा- 'क्या-क्या अर्थ निकल सकते हैं।' दरअसल, मूर्खता बुद्धि की बुनियादी सम अवस्था है या कि मूर्खता ही बुद्धिमानी की शुरूआत है। बुद्धि एक स्थिर चेतना नहीं, बल्कि वह विकसित होती अथवा कमजोर होती या तिरोहित होती चेतना है। बुद्धि का आधार दिमाग से ज्यादा मन है। ब्रेन नहीं, माइण्ड। ब्रेन को फ्राई किया जा सकता है, माइण्ड को नहीं। माइण्ड, ब्रेन को भी फ्राई या ड्राई कुछ भी कर सकता है। इसलिए भारतीय दर्शन में मन को बुद्धि भरमाने वाला अथवा बुद्धि को केन्द्रित करने वाला कहा गया है। मूर्खता एक तरह का गोबर है, जो बुद्धि को खाद देकर उर्वर बनाती है। साहित्य की नींव में आप कालीदास की मूर्खता वाली मगर बुद्धिमता पूर्ण किंवदन्ति को रख सकते हैं। घटनाएं वैसी होती नहीं हैं, जैसी वे साहित्य में दिखती हैं। वे झूठ से सच की ओर जाने की यात्रा करती हैं। कुछ लोग एक रचे-रचाए स्थापित सत्य की रोशनी में झूठ को देखना परखना चाहते हैं। साहित्य, पहले खुद के लिए अथवा अपने अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए, जीवन में फैले झूठ को पकड़ने की कोशिश से युगीन सत्य के करीब पहुंचना चाहता है। युग की मिथ्या अवधारणाओं से पता लगता है कि युग सत्य कितना बदल गया है। इस तरह सत्य भी नये-नये रूप धारण करता रहता है। साहित्य भी जीवन की मूर्खताओं और जीवन के कर्मठ झूठों से टकराते हुए अपनी नीव डालता है। अनेक व्यंज्ञोक्तियों में कहा गया है कि साहित्य झूठ का सबसे बड़ा पुलिंदा है। झूठ की पड़ताल से ही उसके सच को जांचा जा सकता है। भारतीय दर्शन में 'क्रांति द्रष्टा' उसे कहा गया है जो भूत, भविष्य और वर्तमान में एक साथ अतीत को देख सके। भविष्य और वर्तमान को अतीत होते हुए देखना ही 'क्रांति द्रष्टा' होना है। काल और जीवन की संगति-असंगति और दुर्गति को निष्पत्तियों में बदलते हुए देखना क्रांति-द्रष्टा होना है। 'निष्पत्तियां' असल में घटनाओं के द्वंन्द्व और परिवर्तन का लब्बोलुआब यानि कि हर-बार के अलग निष्कर्षात्मक परिणाम की रचनात्मक झलक, जिन्हें परिणति भी कहा जाता है। निर्माण में ही नहीं, ध्वंस में भी रचनात्मकता। घटना का अनुभवात्मक इतिवृत्त कुछ भी हो सकता है। निश्चित और निर्दिष्ट के एकदम विपरीत, स्वीकार्य और अस्वीकार्य के एकदम विरूद्ध। संभवतः इसीलिए दुर्गा सप्तशती में बौद्धिक चेतना को यह कहा गया कि 'या देवि सर्व भूतेषु क्रांति रूपेण, भ्रांति रूपेण, निद्रा रूपेण और बुद्धि रूपेण - संस्थिता। हर रूप श्लाघनीय और नमनीय है।

जितने भ्रमण हैं, उतनी भ्रांतियां हैं। चरखी पर बैठने से हर घूमना, हर चक्कर खुद ही उत्थान-पतन बनकर चकरा देता है। हर चक्कर हृदयगति बढ़ा देता है। वह अनुभव स्वाभाविक स्थायित्व वाली सांसों का बोध पैदा करता है। यह न बौद्धिक है, न मूर्खता भरा। लेकिन एक कर्म और एक प्रयोग के साथ एक संकट भी महसूस होता है।

इसी तरह साहित्य को (और साहित्यकार को भी) सारे सामाजिक पचड़ों में सुधार के लिए जिम्मेदार मान लेना भी नासमझी है, जिसे मुक्तिबोध ने 'मूर्खता' कहा है। साहित्य की भी अपनी सीमाएं हैं। कभी वह समाज के साथ चलता है, कभी आगे। साहित्य भी एक आत्मिक सुधार अथवा साक्षात्कार की विधा है। लेकिन अक्सर साहित्य यथास्थिति दिखाकर चेतना में विचलन पैदा करना चाहता है। साहित्य हर बार, हर समस्या में कोई निदानात्मक क्रांति करेगा, यह समझना भी एक मूर्खता है। आईना किसी को सुंदर नहीं बना सकता। वह जैसे को तैसा दिखा सकता है। जब दृश्य सुंदर होगा, तब प्रतिबिम्ब भी सुंदर हो, यह जरूरी नहीं है। छायाएं केवल ग्रीष्मकाल में ही अच्छी लगती हैं। जाड़ों में वे ठिठुरन को बढ़ा देती हैं। एक सुन्दर और सक्रिय मनुष्य का छाया चित्र कभी स्पष्ट और हू-ब-हूब चित्र की अपेक्षा अधिक कलात्मक हो सकता है। सारी अनैतिकताओं को सुधार न पाने के लिए केवल विज्ञान को ही गालियां नहीं दी जा सकती हैं। सामाजिक परिवर्तन में भी साहित्य अन्य समाज विज्ञानों का कभी-कभी नेतृत्वकारी सहयात्री जरूर रहा है। समाज को सुधारने का या बिगाड़ने का काम बुनियादी रूपों में आज राजनीति कर रही है, और सुधार का ठेका सहित्य को दिया जा रहा

है, यह मूर्खता पूर्ण टेडर है। जिन्होंने बिगाड़ा है, उन्हें ही अधिकांश सुधार के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए विवश करने का काम साहित्य कर सकता है। निर्णय की सारी जिम्मेदारी संदेश वाहकों पर नहीं छोड़ी जा सकती।

प्रश्न : बातचीत के दौरान आपने कहा था कि आज सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि अच्छी कविताएं लिखी जायें। अच्छी कविताओं के निकष पर कुछ चर्चा करें तो अच्छा होगा?

लीलाधर जगूड़ी : निकष तब काम आत है, जब अपने पास धातु हो, धातुओं में भी अपने पास स्वर्ण हो। ढाई अक्षर के तीन शब्द बहुत भ्रामक हैं- स्वर्ण, स्वर्ग और प्रेम। ये जीवन की जड़ता, उत्सर्ग और व्याप्ति के प्रतीक भी हैं। साहित्य ने अभाव और अंधकार को भी एक पदार्थ माना है। शब्द भी यहां धातु है। हर कर्म एक वृक्ष है, जिसमें फल की आकांक्षा नहीं करते हुए किसी 'निष्फल' की भी फल जैसी ही आकांक्षा करनी है। निषेध में स्वीकृति और स्वीकृति में निषेध। दोनों हाथ खालीपन के लड्डुओं से भरे हुए। कसौटियां, खासकर कविता के लिए और वे भी जो हमेशा चल सकें, नहीं बनायी जा सकतीं क्योंकि कविता का जन्म ही अपने समय में परिवर्तन लेने के लिए या परिवर्तन का साथ निभाने के लए हुआ है। वह स्वरूप से लेकर प्रतिपाद्यता और निष्पत्ति तक भीतरी-बाहरी द्वंद्व और कल्लोल के साथ अंत में केवल एक शब्द और उसकी ध्वनि है। शब्द और उसकी ध्वनि की कसौटी केवल श्रोता, पाठक, और भावक अथवा ऐन्द्रिक मनुष्य की समस्त ज्ञान, अज्ञान और विज्ञानयुक्त चेतना है। ध्वन्यार्थ ही कविता की शक्ति है।

भामह और अन्य चिंतकों ने कविता के जो दोष बताये हैं, वे सबसे ज्यादा आज की कविता में मौजूद हैं। खासकर 'वार्ता' और 'वर्णन' मात्र जैसे दोषों की याद दिलाना चाहूंगा। जब भामह कहते हैं कि यह वर्णन है या कविता, यह वार्ता है या कविता, इन प्रश्नों की उत्सुकता से पता पड़ता है कि वर्णन और वार्ता काव्य के दोष हैं। लेकिन सचाई यह है कि प्राचीन कविता हो, चाहे आधुनिक, दोनों में वार्ता और वर्णन न कवल मौजूद हैं बल्कि भरे पड़े हैं। भामह शायद यह कहना चाहते हैं कि वर्णन और वार्ता दोनों में कविता होना जरूरी है। मतलब कि कविता इनसे इतर कोई और तत्व है। भाषा और विभाषा होते हुए भी कविता अपनी कोई और अव्यवहृत, अपारम्परिक भाषा से पैदा होने वाले इन्द्रजाल (जादू) के अज्ञात-अपरिचित अनुभाव का संस्पर्श है। मैंने कुछ ज्यादा ही संस्कृत के शब्द उडेल दिये हैं। अनुभवातीत अनुभव कराने वाली नहीं भाषिक उपस्थिति हमेशा कविता के समकक्ष मानी गयी है। कविता का संदर्भ और भाषा, उसका कथन और ध्वन्यार्थ, उसका रूप (शिल्प) और कलेवर संतुलन यानी कि सब कुछ स्थापत्य की तरह पुख्ता और फूल की तरह आकर्षक होना चाहिए। उसे आकाश की तरह भारहीन और बिना किसी नींव की रंगीनियत से रंजित भी होना चाहिए। ऐसे शब्द और ऐसी ध्वनि विरल हैं। इसीलिए तो कविता भी विरल है। कसौटी नहीं, कविता की कामना महत्वपूर्ण है। कसौटियां हों, और कविता न हो तब क्या होगा?

निकष (कसौटी) बनाने वाले प्राचीन चिंतकों ने कविता के जितने दुर्गुण बताये हैं, वे आज कविता के मुख्य गुण बने हुए हैं। इसलिए कविता की कसौटी बनाकर खूंटा न गाड़ा जाए, तो अच्छा है। फिर भी कविता अपने कथन में कहानी की कथा से, नाटक की कथा से और निबंध की कथा से अलग तरह का स्वाद देती है। उसे देना चाहिए, अन्यथा वह सब विधाओं का हलवा बनकर रह जाएगी। कविता को हमेशा अपने को अलग बनाए रखने के लिए, अपनी प्राचीनता और समकालीनता, दोनों से संघर्ष करना है। इसीलिए अच्छी कविता अर्धनिर्मित भी पूरी दिखती है और पूरी भी अर्धनिर्मित। कविता को पूर्णता और अधूरापन दोनों पसंद हैं। हर पूर्णता में एक अधूरापन तलाशने वाली कविता के खतरे कम नहीं हैं। हर संकल्प में विकल्प पैदा करने वाली कविता निर्विकल्प कैसे हो सकती है? वह हर बार खुद ही अपना एक विकल्प गढ़ती और तोड़ देती है। गढ़ना ही उसका 'तोड़ना' है। कितने कवि हैं, जो अपने समय, जीवन और भाषिक संसार के टूटने को गढ़-गढ़कर तोड़ते हैं?

अपने शिल्प और तौर-तरीकों का गुलाम हो जाना भी बहुत बड़ी रूढ़ि है। रूढ़ि भंजक कवियों की अच्छी कविताओं को एक जगह प्रस्तुत कर एक परिदृश्य रचा जा सकता है। जो कसौटी से भी बड़ा काम करेगा। वह बड़ा काम होगा कविता की मूल धातु बचाने का। अच्छा हो कि अच्छी कविता की हमेशा के लिए एक परिभाषा (कसौटी) न बनायी जाय। कविता को एक प्रवहमान नदी रहने दिया जाय, वह अपना तल काटे, चाहे तट, उसे बहने दिया जाय। कविता का पानी खुद अपने किनारे और अपनी मझधारें बना लेगा। कोई कवि अगर अपनी कविता का एक बांध बनाना चाहता हो तो यह उसकी अनुभव सिंचन और वैचारिक विद्युत उत्पादन की तकनीकी क्षमता तथा दक्षता पर निर्भर रहता है। जो कवि लकीर का फकीर नहीं होगा, उसके संघर्ष, तपस्या और प्रयोग का आकलन अलग से करना होगा। उसकी अपनी कसौटी शायद उसके अपने काव्य में होगी। लेकिन यह जरूर देखा जाना चाहिए कि कितना वह कविता जैसी कविता लिखते रहने की रूढ़ हो चुकी परम्परा से पृथकता स्थापित करने के लिए अपने ज्ञान-विज्ञान से नया काम कर पाया। अपने में अपने से अलग होने की भी एक परम्परा प्रतिष्ठित होनी चाहिए। कविता को बड़े कवि भाषा की एक आदत न बनाकर उसे किसी नयी उपलब्धि में बदलने की निजी चेतना विकसित करते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कविता आकार में बड़ी है या छोटी। मन्तव्य बड़ा होता है। सरलता में जो गहनता होती है, वह रहस्यमय होते हुए भी टिकाऊ होती है। शब्दों के अम्बार और टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों के बावजूद देखना चाहिए कि कविता वहां है भी या नहीं? प्रयोग की कोई सीमा नहीं, पर वह सार्थक होना जरूरी है। लेकिन निरर्थक दिखने वाला साहस भी सार्थक चीजें पैदा कर सकता है।

प्रश्न : कविता को 'मनुष्यता की मातृभाषा' कहना कहां तक उचित होगा?

लीलाधर जगूड़ी : दरअसल, मनुष्यता एक अच्छी सोच और अच्छे व्यवहार का नाम है। दुनिया

के सभी धर्मों, व्यवस्थाओं और सभ्यताओं में प्रारंभिक मनुष्य की अच्छी, बुरी जैसी भी सोच थी, व्यवहार था, उन्हीं जीवन पद्धतियों में से भाषा और अभिव्यक्ति के सर्वथा अकल्पित संसार का जन्म हुआ। प्राकृतिक दुनिया में सोच की एक अलग दुनिया पैदा हुई। बात कहने और बात समझने, और बात को मानने और न मानने के स्वभाव की पहचान से कुछ कायदों और विश्वासों का जन्म हुआ। इन्हीं परखे हुए परिणामों से मानवीय संस्कारों और मूल्यों का जन्म हुआ। यह क्रमशः विकसित होता असाधारण वैचारिक संसार था। कर्म, अनुभव और क्रियाओं की अनुभूति ने मनुष्यों की संवेदनाओं को निरंतर परिष्कृत किया और तब पैदा हुआ मनुष्य के अंदर एक और मनुष्यता वाला मनुष्य। यह सुसंस्कृत और सभ्य होता मनुष्य अपने में ही दो-दो, तीन-तीन प्रकार का द्वंद्वात्मक, विडम्बना और छलनाओं से दंशित जीवन जीते हुए, मृत्यु से पहले अपने प्रियों के जीवन में, अपनी बातों से बने रहने की इच्छा से, अनुभव आधारित कुछ कहने की उत्कृष्ट कोशिशें करने लगा। उसकी वाणी में कर्मों और अनुभूतियों के शिला लेख की तरह कुछ भाषिक तत्व आने लगे। परिणाम यह हुआ कि अभिव्यक्ति, विरल अभिव्यक्ति, संजो लेने वाली अभिव्यक्ति, परस्पर विचार-विनिमय की शैली बनने लगी। इसी अभिव्यक्ति में कर्म के गंभीर अनुभव से पैदा हुई भाषा ही मनुष्य की मातृभाषा बनी। सभी धर्मों, व्यवस्थाओं और सभ्यताओं में इसी प्रारंभिक मातृभाषा का नाम कविता पड़ा। कहने वाले के तात्पर्य की अर्थात कवि के तात्पर्य से भी कविता पैदा हुई है। बिना कवि के कविता नहीं हो सकती। कविता के मूल में वह मनुष्य है, जो कवि भी है। जो सारी अनुभूतियों को भाषा में रचने के लिए अपनी स्मृति और मानसिक उद्यम के साथ निरंतर अपनी संलग्नता, तत्परता और नया कुछ कहने की सार्थकता को उकसाता हुआ उससे जूझता रहता है। इसी तात्पर्य प्रधान चिंता से हमेशा, हर युग में कवियों ने एक-न-एक नयी काव्यभाषा को जनम देने के सार्थक प्रयास किए हैं। इस प्रकार कविता सिर्फ कवियों की ही नहीं बल्कि सारी चिंतन शील मनवता की मातृभाषा बन गयी।

कविता दरअसल अपने होने की प्रारंभिक से लेकर आधुनिक तक होती हुई सबसे पुरानी कार्यवाही है। कविता ने भाषा के छंद, लय और व्यंग्य के सारे पैटर्न अपने शुरूआती समयों में ही खोज लिए थे। परिस्थिति, घटनाएं और विचार उन्हें नया रूप देने में लगे रहते हैं। मनुष्यता में तो यथास्थिति चल सकती है लेकिन कविता में लकीर के फकरों की जगह नहीं होती। आत्मा की चेतना ने भी इतिहास, भूगोल और सभ्यताओं की लंबी उठा-पटक और यात्राएं झेली और देखी हैं। इसलिए उसकी आधुनिक बने रहने की ललक और शक्ति को आज 'मनुष्यता की मातृभाषा' कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है। पर सुधीजनों ने कविता को आत्मा की मातृभाषा भी कहा है।

प्रश्न : धर्म शास्त्र और राजनीति के साथ कविता का क्या संबंध होना चाहिए?

लीलाधर जगूड़ी : यह तो आप कुछ इस तरह पूछ रहे हैं, जैसे अत्याचारी और पापी के साथ कविता के क्या संबंध होने चाहिए। धर्म, मनुष्य समाज के जीवन में पहले विज्ञान और पहली राजनीति के रूप में आया। सारी दुनिया दरअसल 'अ-धर्म' से शुरू हुई। इसलिए प्रारंभिक व्यवस्था के रूप में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म, प्रारंभिक अवस्था में अधिकार और कर्तव्यों की पहचान कराने वाला सामाजिक विज्ञान रहा है। धर्म ने प्रारंभिक मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्वों को शामिल किया है। धर्म ने एक भूभाग के मनुष्यों के बीच ऐक्य की स्थापना की। कालांतर में धर्म ही राजनीतिक व्यवस्था का मुख्य प्रेरक बन गया। उत्पादन के, और यातायात के साधनों में क्रांति आ जाने के कारण धर्म, बाह्य आचरण की जगह आंतरिक विश्वासों का हिस्सा अधिक बनता चला गया। धर्म से हटकर शासन-प्रशासन अलग इकाई के रूप में अपना स्थान बनाने लगे। धार्मिक मूल्य और सामाजिक मूल्य, दो अलग विचार धाराएं बन गईं।

कविता, अभिव्यक्ति की स्मृतिवान शैली के रूप में धर्म और समाज विज्ञान दोनों को अभिव्यक्त कर दर्ज करने के काम आने लगी। गणित और चिकित्सा के विचार भी कविता की शैली में अभिव्यक्त होने लगे। कविता एक तरह से संचार माध्यमों की भाषा बन गई। कविता अपने में बोलने और लिखने का माध्यम बनकर हर युग में अभिव्यक्ति का बीजात्मक परिष्कार करने में जुटी हुई दिखती है।

शुरूआत में देखे तो कविता धर्म की भाषा लगती है। लेकिन आगे चलकर कविता जीवनानुभव की भाषा बनती चली गई। कविता का धर्म, राजनीति, रूढ़ियां, रीति-रिवाज, परम्पराओं से भी सरोकार रहा है। कविता का संबंध प्राथमिकताओं, अनुरोधों और विरोधों से भी एक साथ, एक ही समय में अक्सर देखा गया है। जीवन का कोई भी संदर्भ कविता का विषय हो सकता है। धर्म अलग है और धर्मशास्त्र एकदम अलग चीज है। राज और राजनीति दोनों अलग-अलग आयाम हैं। राजनीति, कभी-कभी संपूर्ण जीवन कर्म के लिए भी इस्तेमाल की जाती है। परिवार, संपत्ति, उपार्जन, अधिकार, सुरक्षा, समानता, न्याय, कर्तव्य, बेहतर जीवन और जीने की सार्थकता, सब राजनीति से जुड़े हैं। जीवन और समाज की राजनीति से कविता या कि साहित्य मात्र अलग होकर नहीं रह सकते, न जी सकते हैं। कविता का संबंध सारे सबंधों से है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि कविता या कि साहित्य के लिए कुछ भी वर्जित नहीं है। कविता अगर 'दृष्टि' है तो वह सब पर पड़े बिना नहीं रह सकती ।

प्रश्न : कविता को मानवीय संस्कृति के साथ जोड़कर कैसे देखा जा सकता है?

लीलाधर जगूड़ी : कविता केवल मनुष्य संस्कृति (जीवन पद्धति) का ही हिस्सा नहीं रही बल्कि जहां मानव नहीं है, उसे भी कविता ने मानव की तरह जीवित पदार्थ के रूप में देखा है। कविता परकाया प्रवेश की भाषा है। वह सबकुछ में जिंदापन और बातचीत का माहौल देखती है। कविता जड़ वस्तुओं से भी संवाद कराती रही है। हर चीज को जीवित मानकर कविता के दुःख और उसकी करुणा हमेशा ही कठोर से कठोर मनुष्य को भी कोमल और अधिक मानवीय बनाती रही है। 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमदपि' यह स्वभाव भी कविता का रहा है। मनुष्य और अन्य पदार्थों के

अन्तर्द्वंद्व को कविता एक व्यक्ति की समग्र चिंता में बदल देती रही है।

कविता ने संस्कार और संस्कृति के अवरोधों को बदलने में वही भूमिका निभाई है। आगे भी भू-विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में मनुष्य चेतना के अद्वितीय प्रसंगों को पैदा करती रहेगी। जंगल में वनस्पतियों के बावजूद कविता घास की तरह मनुष्य के हमेशा आस-पास उगती रहेगी। कविता वह आर्दश घास है, जो आधुनिकतम समय और संग्राम में मनुष्य का साथ नहीं छोड़ेगी। मनुष्य हर काल में कविता को लगभग अपना निजी संवाददाता बनाए रहेगा। कविता का रूप बदल सकता है, मंतव्य और गंतव्य नहीं। कविता बनाने में ही मानवीय संस्कृति का हाथ नहीं है बल्कि मानव संस्कृति को बेहतर करके आगे बढ़ाने में भी कविता का हाथ है।

प्रश्न : जिन्दगी की कठिनाइयों, मुसीबतों, जटिलताओं और अंतर्विरोधों के बीच ही श्रेष्ठ कविता का सृजन होता हैं, इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

लीलाधर जगूड़ी : सारे जीवन, सारे कर्म, सारे अस्तित्व सापेक्ष हैं। आनंद भी निरापद नहीं है। सुरक्षा भी कम बड़ा खतरा नहीं है। न्याय भी बहुत बड़े अन्याय का कारण कई बार दिखाई दिया है। वृक्ष अगर जटिल न हों तो इतनी सरलता से जीवित नहीं रह सकते। विरोधों की परम्परा अंतर्विरोधों से ही शुरू हुई है। राजा भी कवि हुए हैं लेकिन बहुत कुछ खोने की कमाई के बाद। कठिन परिश्रम के बाद आराम की कीमत महसूस होती है लेकिन लगातार आराम भी मनुष्य को बीमार बना दे सकता है। श्रेष्ठ कविता के सृजन का कोई एक पैमाना नहीं बनाया जा सकता। अभाव भी एक भाव और पदार्थ है। कमी भी कमी के रूप में एक विशेषता बन सकती है।

प्रश्न : नियम की दीवारों को फांदकर कविता नई कल्पना में बसती है, क्या इसे सच माना जा सकता है?

लीलाधर जगूड़ी : फांदकर नहीं बल्कि तोड़कर कविता अपने को हमेशा नया बनाती रही है। कल्पना भी ऐसी कि जो यथार्थ का ही स्थानापन्न लगे। नियम में जो 'यम' की ध्वनि है, वह मृत्यु की भी सूचना देता प्रतीत होता है। कविता में कानून नहीं चलते, भावनाएं और संवेदनाएं चलती हैं। कल्पना भी ऐसी कि जो आज तक की कल्पना जैसी न हो। कल्पना भाषा को भी नया जन्म देती है। यही वजह है कि वह यथार्थ को नये रूप में प्रस्तुत कर पाती है। संदर्भ, कथ्य और अंदाजेबयां सबकुछ बदलकर लाना पड़ता है कविता में। कविता जैसी कविता से कविता में काम नहीं चलता। स्थगित तौर-तरीकों से बाहर कुछ बनाना पड़ता है, जो अलग तरह की कविता जैसा बन जाए। तभी तो वह मुहावरा कहा जात है कि भाषा है, शब्द है, एक कथ्य भी है लेकिन कविता नहीं है। कविता इन सबके बावजूद इन सबसे अलग भी वहां होनी चाहिए। तभी कविता अपना कोई नया स्वाद, नया अर्थ और नया रूप भी दिखा पाएगी। तभी कविता, नाटक, कहानी और निबंध से (गद्य के बावजूद) अलग हो पाएगी। कविता अपना गद्य अलग तरह से रचती है। कविता को अपने गद्य का चेहरा-मोहरा ही नहीं, उसकी आत्मा को भी बार-बार अलग से बनाना पड़ता है।

प्रश्न : कहीं जिक्र आया है कि समकालीन कविता को युवा कविता से अलग करके देखा जाय। क्या यह समीचीन और संभव है?

लीलाधर जगूड़ी : हर कवि की अपनी समकालीनता होती है, जरूरी नहीं कि वह समकालीनों का ही समकालीन हो। हो सकता है, वह समकालीनों से भी अधिक समसामयिक हो। हो सकता है, वह समकालीनों से भी अधिक दीर्घकालीन या कि बहिरकालीन हो। समकालीन होते हुए भी जो काल को लांघने की क्षमता रखता हो, वही काल से होड़ ले सकता है। वरना मात्र समकालीनता ही उसे काल-कवलित कर सकती है। रचना में काल को कालांतरित करने की विशेषता दुर्लभ है। क्योंकि अपने समय से बाहर जाने के लिए पहले अपने समय का होना जरूरी होता है। अपने समय को काल और महाकाल का हिस्सा बनाना, रचनाकार के आंतरिक संघर्ष और वैश्विक चेतना और ज्ञान के साथ विज्ञान की दृष्टि का अनुमेलन इत्यादि पर निर्भर करता है। सुपठित होते हुए भी कितना वह उस पठन-पाठन से अपनी मौलिकता की मुक्ति को रच पाया है। इसीलिए समालोचना और भाष्य को भी नयी दृष्टि की जरूरत पड़ती है। समकालीनता से कोई अच्छा रचनाकार बच नहीं सकता और उसी में वह हमेशा सीमित भी नहीं रह सकता। क्या समीचीन है। और क्या संभव है, समकालीन का यह भी एक द्वन्द्व है।

प्रश्न : कुछ लोगों का कहना है कि बहुत से कवि कविता लिखते समय तो संवेदनशील होते हैं किंतु, तुरंत बाद संवेदनहीन हो जाते हैं। क्या यह विश्वसनीय हो सकता है? यदि हां, तो इसके दुष्परिणाम क्या होंगे?

लीलाधर जगूड़ी : असल में यह जरूरी नहीं है कि कवि कविता को लिखते समय में ही पकड़ रहा हो। वह विचार के रूप में अपनी शब्द-संगति के साथ कभी भी आ सकती है। क्रूर, अधम और पापी व्यक्ति भी किसी बिन्दु पर कवि हो सकता है। कहीं से भी वह मानवीयता और नैतिकता की ओर आ सकता है। इसलिए साहित्य में कविता का क्षेत्र आदिम लोकतंत्र या कि आदिम स्वातंत्र्य का क्षेत्र रहा है।

न तो संवेदित रहना एक स्थाई गुण है, न संवेदना बिना कारण के छलकती या छलकती रहती है। संवेदना कभी-कभी गाय-भैंस के प्रयत्न पूर्वक पगुराने जैसी होती है और कभी-कभी बच्चे की याद आते ही मां की छाती भर जाने जैसी संवेदना भड़काने के भी उपादान घटित होते हैं। आत्मा की कोठरी में संवेदना खूंटी पर हर वक्त कोट की तरह नहीं टंगी हुई रहती। संवेदना एक प्रेरक भाव है, जो कभी जल्दी, कभी देरी से भी किसी में पैदा हो सकती है। अपनी ही क्रूरता भी अपने में संवेदना पैदा कर सकती है और कभी दूसरे की सदाशयता भी किसी को क्रूर बना सकती है। मनोवेग और मनोभाव तरह-तरह से प्रेरक हो सकते हैं पर कविता करते समय प्रसंग, घटना और पात्र के अनुसार संवेदना भी अपने को अदलती-बदलती रहती है। अगर प्रसंग में क्रूरता है तो वह भी अद्वितीय होनी चाहिए। अगर आश्चर्य और भाषाहीन या कि उपमा

विहीन स्थिति है तो कवि के लिए ज्यादा चुनौतीपूर्ण क्षण उपस्थित हो जाता है। जैसे कि वाल्मीकि के सामने तब हुआ होगा, जब वे यह कह रहे थे कि - 'आकाश की उपमा सिर्फ आकाश से दी जा सकती है, कि आकाश, आकाश के समान है। सागर से सिर्फ सागर की ही उपमा दी जा सकती है क्योंकि सागर ही सागर के समान है। ठीक इसी तरह राम और रावण के युद्ध की किसी से अगर उपमा दी जा सकती है तो वह केवल राम और रावण के ही युद्ध से दी जा सकती है। क्योंकि राम और रावण का युद्ध किसी दूसरे के समान था ही नहीं।

गगनः गंगन संदृशं, सागरः सागरोपम्
राम-रावण योर्युद्धं, राम रावण योरिव।

कवि भी एक मनुष्य है, जो मनुष्य होते हुए एक कवि है। वह अपनी संवेदना से अपने ढंग से काम लेने के लिए स्वतंत्र होते हुए भी तर्क और न्याय की दृष्टि उसकी ओझल नहीं होनी चाहिए। संवेदना के पंख कभी पानी के हो सकते हैं, कभी पत्थर के, कभी हवा, खुशबू और संगीत के भी हो सकते हैं। संवेदना के आकाश में भारी पहाड़ भी खड़े हो सकते हैं और महज एक फूल भी खिल सकता है।

प्रश्न : इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में कविता की स्थिति और उपस्थिति आप किस प्रकार देख रहे हैं?

लीलाधर जगूड़ी : हर युग की कविता अपने से पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव से जन्म लेकर अपने-आप अपने पुनर्जन्म की तैयारी करती है। स्वयं कवि की चेतना और समझ ही इसमें साधक और बाधक दोनों होती है। हर बीस या पचीस साल में हर युग में पीढ़ी का संपूर्ण टकराव, विभाजन अथवा परिवर्तन दिखाई देता है। सौ साल में तीन या चार बार पीढ़ी परिवर्ततन की स्थितियों में टकराहट महसूस होती है। लेकिन बीसवीं सदी में पिछलों से अलग होने की घोषणाएं प्रत्येक दस-दस वर्ष पर होने लगीं। कुछ लोग यह भी मानने लगे कि पंचवर्षीय योजनाओं की तर्ज पर परिवर्तन लक्षित करने की कोशिश होनी चाहिए। पर मनुष्य अपने इतिहास (अतीत) से जुड़ा भी रहना चाहता है और अधुनिकतम भी होना चाहता है। कभी वह अपने बचपन से दुनिया की शुरूआत मानने लगता है, कभी मानवता के बचपन से। मनुष्य भी नदी की तरह अपनी परम्परा के दो किनारे खुद ही बना लेता है। बीसवीं सदी में एक हिस्सा आजादी से पहले का है। और दूसरा हिस्सा आजादी के बाद का लेकिन उत्तरार्द्ध, में दशक प्रणाली में जिन तत्वों को लक्षित किए जाने की कोशिश की गई, वे आजादी के बाद के जन-जीवन संघर्ष के सार्थक और निरर्थक पक्षों को प्रस्तुत करने के अलावा इन सबसे हटकर भी बहुत कुछ करते दिखते हैं। धर्म और विज्ञान की टकराहट जिस तरह साहित्य में आनी चाहिए थी, उस तरह आई नहीं। बस, यथार्थ के विरुद्ध स्वप्न देखने की प्रवृत्ति को बहुत बढ़ावा देने से साहित्य में एकरसता की अपार प्रगति हुई है। अब अपने से, अपने समय से बाहर आने की वैचारिक स्थितियां दूसरों को भी अपने साथ रखकर सोचने के लिए विवश करने लगी हैं। दुनिया का आर्थिक सहकारिता का ताना-बाना बदलने लगा है। न सब कुछ बदला है, न सबकुछ पहले जैसा रह गया है। परिवर्तनों में जो दोस्ती हो रही है, उसको पहचानने का समय आ गया है। अब एक नया सामूहिक चिंतन पैदा हो रहा है जिसमें सारे वैयक्तिक स्वर किसी अप्रत्याशित समूहगान का हिस्सा होने जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में वह दिन अब दूर नहीं है, जब वह वैश्विक समूहगान हमारे बीच गूंज उठेगा। वैश्विक हुए बगैर अब कोई राष्ट्र जीवित नहीं रह सकेगा। वैश्विक चेतना का मानवीय दरवाजा इक्कीसवीं सदी खोलेगी और कविता का पुराना सपना साकार होता दिखेगा - वसुधैव कुटुम्बकम्।

प्रश्न : साहित्य सृजन को सामाजिक जिम्मेदारियों, उत्तरदायित्वों से भरा रचनाकर्म कहना कहाँ तक उचित होगा?

लीलाधर जगूड़ी : साहित्य सृजन किसी कानून सम्मत तरीके से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। लेकिन मनुष्य-समाज और प्राकृतिक समाज को इसमें भुलाया भी नहीं जा सकता। कभी-कभी गैर जिम्मेदारियों से और अनुत्तरदायी ढंग से कोई साहित्य अपने को अस्तित्व में ला सकता है। गलतियों और झूठ के बिना हम सुधार और सत्य तक नहीं पहुंच सकते। साहित्य हमारे बदले की सारी ये गलतियाँ जो हम करते हैं, और फिर कर सकते हैं, उनको एक साथ घटित होते हुए दिखा कर हमें फिर से उसमें पड़ने से विरत कर सकता है या बचा सकता है। लेकिन यह सब करने के लिए साहित्य को बहुत आपत्तिजनक स्थितियों से गुजरना पड़ सकता है। यह साहित्यकार की अपनी कल्पना शक्ति, सूझ-बूझ पर निर्भर करता है कि वह अपने रचना संसार को कैसे खड़ा करना चाहता है। हो सकता है, वह परम्परा विरुद्ध कोई रास्ता अपने लिए खुद रचे। यह जोखिम लेने की उसकी ज्ञानात्मक संवेदना पर निर्भर करता है। हो सकता है, कोई साहित्यकार उस कैदी की तरह अपने लेखन का रास्ता ढूंढ रहा हो, जो जेल से हथकड़ी पहने हुए भागा हो। हाथ मुक्त नहीं है। भय पीछा कर रहा है। किसी एक व्यक्ति, किसी एक घर की वजह से उसे दुनिया से बहुत ज्यादा प्यार हो। वह प्यार और हथकड़ी दोनों बंधनों में बंधा हो। तब वह अपनी दुनिया की स्वतंत्रता और संबंधों की मानवीय स्थितियों का निर्वाह कैसे कर पाता है? अनेक तरह की चुनौतियॉ और कई उत्तरदायित्व हो सकते हैं। उनकी आचार संहिता नहीं बनायी जा सकती। अराजक साहित्य भी जीवन को व्यवस्थित होने की प्रेरण दे सकता है। साहित्य में कुछ भी आदर्श और अनादर्श तय करना खतरनाक हो सकता है। साहित्य यथार्थ का, उसके अयथार्थ रूप तक पीछा करता है। कभी फैंटेसी द्वारा कभी आतियथार्थ जैसे अविश्वसनीय तरीके द्वारा। साहित्य को अपनी रचना से बाहर आते हुए ही देखा जा सकता है, उसको पढ़ने के तो उपाय सुझाए जा सकते हैं, गढ़ने के नहीं। गढ़ना एक वैयक्तिक दुर्घना की तरह नितांत आकस्मिक है।

प्रश्न : क्या सामान्य रचनाधर्मिता के सामानान्तर एकेडमिक सृजनशीलता भी चल रही है? इसमें साहित्य का नुकसान तो नहीं?

लीलाधर जगूड़ी : श्रेष्ठ रचना धर्मिता समान्य होती ही नहीं है। वह हमेशा असामान्य होती है। सधारण भी वह असाधारण होती है। सरल भी वह जटिल होती है। यों सी दिखने वाली वह एक कठिन

दूरदेशी से भरी होती है। किसमें कितना आकाश और अवकाश होता है, यही उस क्षमता को प्रकट करते हैं, जिसमें स्पेस (विस्तार) हो। जानकार पाठक और गैर जानकार पाठक को नया स्पेस देने की शक्ति जहां हो। इसीलिए सामान्य शून्य भी संख्या को अगणित करता दिखता है।

अकादमिक सृजनशीलता भी कोई निकृष्ट और त्याज्य चीज नहीं है। उसके लिए भी स्वाध्याय भरपूर होना चाहिए। सुपठित लोग ही अच्छा अकादमिक लेखन कर सकते हैं। सरल और नुकसानदेह कुछ भी नहीं है। अगर मैं कविता नहीं लिख रहा या नहीं सुना रहा और इण्टरव्यू का सामना कर रहा हूं तो कुछ लोगों के लिए यह रचनाधर्मिता के समानांतर अकादमिक सृजनशीलता हो जाएगा, या शायद वह भी नहीं। रचनाधर्मिता को किसी खास खूंटे से बांधना मेरी दृष्टि में उचित नहीं है। हर सृजनशीलता स्वयं में रचना धर्मिता है।

साहित्य की प्राचीनतम भारतीय परिभषा के अनुसार जिसमें भी मनुष्य के हित साहित चलने की शक्ति हो, वह साहित्य है। अब तो किसी भी तरह के विवरण, निरूपण वैचारिक संकलन, वस्तु,-सूची इत्यादि की जानकारी और सूचनाएं देने वाले दस्तावेजों को भी साहित्य कहा जाने लगा है। होटलों के मीनू भी कुछ समय बाद साहित्य में शामिल किए जा सकते हैं। प्रकाशक तो अपने प्रकाशन सूचीपत्र को भी साहित्य की ही शक्ल में निकालते हैं। नुक्सानदेह या फयदेमंद वे उस स्तर पर हो सकते हैं कि हम उन्हें किस रूप में ले रहे हैं। रचनाधर्मिता और सृजनशीलता में कोई खास बुनियादी अंतर नहीं है। सबमें सृजनशीलता की जरूरत होती है। एक बटी हुई रस्सी की तरह रचना भी बनानी पड़ती है। अगर बनाने वाले न हों तो कुछ बन ही नहीं सकता। बनाने की इच्छा ही सृजन तत्व है। कोई रॉ मटीरियल बनाता है। कोई उससे फिनिश गुड। रचना और सृजनशीलता का साहित्य अकादमी तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। अकादमिक सृजनशीलता साहित्य के अर्थविस्तार, व्याख्या और जिसकी परम्परा खत्म हो गई है, साहित्य के भाष्य में सहायक सिद्ध हो सकती है।

प्रश्न : कविता को 'लोक का विश्व' कहना कहाँ तक उचित होगा?

लीलाधर जगूड़ी : कविता का संबंध समाज विज्ञान के साथ-मनोविज्ञान से भी है। जीवन को होते हुए देखना पड़ता है, केवल परिभाषित होते हुए नहीं। लोक से ही सब कुछ पैदा होता है। जो लोक में है, समझो कि वहीं आलोक में है। लोक का अपना आलोक है। दिखाई देना बड़ी भारी ऐंद्रिक घटना है। इसीलिए आलोचन और अवलोकन महत्वपूर्ण हो जाते हैं। आंख की अपनी सीमा है पर देखने के और भी कई ढंग हैं। अनुभूति और स्पर्श उनमें प्रमुख हैं। त्वगेन्द्रिय भी छूने को अनुभव में बदल देती है। दृश्य का भी स्वाद होता है। इसलिए देखना कई प्रकार का माना गया है। ये सारी देखने की प्रक्रियाएं जहां तक जाती हों, उन्हीं को आलोचना कहा गया है। केवल निंदा-प्रशंसा ही अवलोकन नहीं है। शीशे में देखना और पानी में देखना, दो तरह का देखना है। घ्यान में देखना और अंधेरे में देखना भी अलग-अलग है। स्पर्श में देखना और स्वाद में देखना, कतई भिन्न है। देखने का अनुभव भौतिकता का चरम अनुभव है। देखने से ही दर्शन बना है और दर्शन आज भी विज्ञान का प्रारंभिक रूप है।

लोक की धुरी पृथ्वी और मनुष्य है। बाकी सब उपादान प्रतीत होते हैं। पर इतना समझना ही पर्याप्त नहीं है। शास्त्र भी लोक से ही बने हैं। वेद भी लोक की रचनाएं हैं। वेद को सबसे पहली रचना इसलिए माना गया है कि उससे पहले कोई भाषा आधारित रचना अपनी समकालीन और दीर्घकालीन समस्याओं अथवा परिस्थितियों का वैसा वर्णन नहीं करती है। संवेदना के दो तट हैं। एक-लौकिक, दूसरा-अलौलिक। अलौकिक भी इसी लोक में महसूसना पड़ता है। कभी एक किनारा गहरा होता है, कभी दूसरा। लौकिक का सर्वाधिक आनंद देने वाला नयापन अलौकिक है। कविता का विषय अगर जीवन जगत से जुड़ा हुआ है तो उसे व्यक्ति के अनुभवों का विश्व कहने में पता नहीं क्या मुश्किल हो सकती है? कविता कभी लोकमंगल, कभी लोक दर्पण, कभी लोकरंजन, कभी लोक अंकन में किसी न किसी बहाने अभिव्यक्ति के उत्कृष्टतम रूपों में उपस्थित रहती है, इसलिए उसे लोक के सामानंतर विश्व कहने में मुझे कोई आपत्तिजनक बात नहीं लगती। विश्व में कविता के कई लोक संस्करण दिखाई देते हैं, जो कविता की भी एक नई दुनिया बनाए रखने में अपना योगदान देने से नहीं चूकते। आत्मा की और मानवता की मातृभाषा के रूप में कविता को लोक का विश्व कहा जाना मुझे सर्वथा उचित लगता है।

प्रश्न : कविता में अनुभव की प्रधानता को किस सीमा तक स्वीकार करना चाहेंगे?

लीलाधर जगूड़ी : अनुभव और अनुभूति ही संवेदना के तंत्र को सक्रिय करते हैं। कर्म और घटना का अनुभव ही भाषा की अनुभूति को तदाकार करने की कोशिश करते हैं। इसी से कविता के अन्दाजे बयां में फर्क पड़ता है। कविता में अनुभव और अनुभूति यदि अपने लायक नई भाषा का निर्माण नहीं करती तो वह एक साधारण अभिव्यक्ति बनकर रह जाएगी। हर अनुभव को काव्यानुभव में ढालने के लिए कवि को यह भी बताना होता है कि शब्दावली ही अभिव्यक्ति को एक नए कर्म में बदल रही है। रचनात्मक कर्म में भाषा गढ़ने की और अनुभव को पढ़ने की कला हर कवि में अलग-अलग तरह से काम करती है। महसूसना जब एक संवादत्मक क्रिया बना जाए, तब समझो कि अब बात बोलेगी जरूर। ऐसा करने के लिए कवियों को स्थापित सत्य के विरुद्ध भी अक्सर जाना पड़ता है। अभिव्यक्ति की जान है अनुभव और अनुभूति। इन्हीं से नई भाषा की तलब शुरू होती है।

प्रश्न : क्या इसे सच माना जा सकता है कि आजकल कविता लिखना आसान हो गया है?

लीलाधर जगूड़ी : हाँ, किसी हद तक फ्रीक्र्स के नाम पर टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों में लिखना कविता की पहचान बना दिया गया है। सीधा-सीधा लिखा है तो गद्य, और टेढ़ा-मेढ़ा लिखा है तो कविता। इससे कोई कवि हो जाए, सहज संभाव्य है। शब्द है वहाँ, वाक्य है लेकिन तब भी देखना यह है कि वे कविता की असाधारण अभिव्यक्ति बना पा रहे हैं या नहीं? जब तुकबंदी को ही छंद माना जाता था, तब भी यही

संकट था कि तुक ही सारे संदर्भ या कि कथ्य को हांकने लगते थे। लय नहीं, तुक महत्वपूर्ण हो जाते थे और कविता निस्सारता के बावजूद टेक्नीक के सहारे बढ़ जाती थी। कविता के गद्य की अब अलग से पहचान चिन्हित की जानी चाहिए। कविता का गद्य अपनी कथन भंगिमा में साधारण गद्य से अलग होना ही चाहिए- वरना कविता किस चिड़िया का नाम है। कवियों को चाहिए कि कविता का रूप, लावण्य और अनुभव संप्रेषण क्षमता को सामान्य गद्य से अलग तरह का व्यंजना पूर्ण और भंगिमापूर्ण गद्य बनाए रखें। जब बात की अद्वितीयता को महत्व दिया जाएगा, तब कविता की अपनी वाक्शक्ति की अलग पहचान बन पाएगी। विशिष्ट उक्तियों से रहित भाषा को कविता नहीं कहा जा सकता। काव्य-तत्वविहीन सिर्फ टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियां लिख देने से कविता का बहुत नुक्सान हो रहा है।

इसी से कविता लिखना आजकल आसान दिखने लगा है। कविता के टेढ़े-मेढे लिखे जाने ने कविता के क्राफ्ट का रूप ले लिया है। जैसे पहले तुकबंदी ने छंद का स्थान ले लिया था। कोई कथ्य जिस तरह की लय चाहता है, वही उसका छंद है। मात्राओं से ज्यादा छंद सांस पर निर्भर करता है। कौन कवि सांस का कैसे इस्तेमाल करता है, यह उसके वाक्य-विन्यास के शब्दों की रवानी में करता है। यह उसके वाक्य विन्यास के शब्दों की रवानी में देखा जाना चाहिए। सांस से ही 'बहर' तय होती है। जब अभिनेता संवाद बोलते हैं तो वाक्याकार के अनुरूप सांस लेते हैं। बोलते समय उसी के अनुरूप सांस छोड़ते हैं। श्वास अंदर लेने से फेफड़े परिचालित होते हैं और श्वांस बाहर छोड़ने से शब्द परिचालित होते हैं। सांस की समयावधि घटाने-बढ़ाने की प्रक्रिया से जो लयात्मकता भाषा में पैदा होती है, उसी से छंद का मिजाज बनता है। श्वांस आधारित प्राण और श्वांस आधारित भाषा प्राणों को भीतर जाती वायु शक्ति देती है। और वायु बाहर निकलते समय स्वर तंत्रों को सक्रिय कर देती है। सांस से ही लय और छंद का जन्म होता है। भाषा चाहे जो हो, सांस ही स्वर का संदर्भ है। वायु का गुण भी ध्वनि है। प्राणवायु ही भाषा में विसर्जित होती है। फर्क इतना है कि यह विसर्जन भी एक सृजन है। कविता को शिल्प और संदर्भ दोनों में देखा जाना चाहिए। सिर्फ गद्य ही कविता नहीं है पर बिना गद्य कोई कविता बन भी नहीं पाती। कविता को अपने लिए कविता वाला गद्य रचना पड़ता है। उस गद्य के बिना कविता अपने व्यक्तित्व को बाकी गद्य से अलग नहीं कर सकती। कविता के गद्य को श्रेष्ठतर गद्य होना पड़ेगा। 'गद्' धातु से गद्य शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है 'निगदति' अर्थात सोच समझकर बोलना। गदति सिर्फ बोलना है, निगदति सुविचारित बोलने को कहा गया है। गद् धातु पाणिनी के व्याकरण में गदति के लिए उतनी नहीं, जितनी 'निगदति' के लिए निष्पादित की गई है। किसम-किसम के गद्य में कविता जैसी गहरी व्यंजना वाला नाटकीय गद्य कविता में कम आ रहा है। कविता को हर युग में अपने गद्य की खोज और निर्मिति से गुजरना होता है। गद्य की एक और निर्मिति कविता को संवारेगी। कविता को या तो निरी कहानी या तो निरा निबंध बनाने वाले कवियों ने अनुकताओं की एक फौज तैयार कर ली है और उसे वे अपनी कविता की लोकप्रियता से जोड़ते हैं। इससे भी कविता का नुक्सान हो रहा है।

प्रश्न : नई पीढ़ी के बच्चे भारत में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा लेकर अंग्रेजी ही बोल-लिख रहे हैं। ऐसे में बाईसवीं सदी की भाषा क्या हिन्दी रह पाएगी?

लीलाधर जगूड़ी : भाषा दो प्रकार की होती है- (एक) जुबानी, (दूसरी) लिखित। अब्दुल रहीम खानखाना और रसखान की लिखित भाषा उर्दू-फारसी थी, लेकिन जबानी भाषा उनकी ब्रज थी, जो कि हिन्दी के पूर्व रूपों में एक है। फारसी आज भारतीय समाज में राजभाषा न रहने के कारण उतनी सर्वव्यापी, लोकप्रिय नहीं रह गई है। उक्त के अलावा अमीर खुसरो और मलिक मोहम्मद जायसी भी लिखते फारसी लिपि में थे लेकिन जुबान उनकी तत्कालीन भारतीय हिन्दी से लबरेज थी। मीर और गालिब के साथ भी यही बात थी। भारतीय रेख्ता, भारतीय हिन्दी बनकर छा गया। जुबान से मीर और गालिब हिन्दी के ही पूर्व रूप के कवि हैं।

15 अगस्त 1947 को गांधी जी ने बीबीसी संवाददाता को एक वाक्य का इण्टरव्यू दिया था - 'पूरी दुनिया को बता दो कि गांधी अंग्रेजी बोलना भूल गया है।' अंग्रेजी भाषा तब दासता का प्रतीक थी, आज बाजारी रोजगार का प्रतीक है। हिन्दी लगभग 11वीं सदी से 17वीं सदी तक फारसी को दसता का प्रतीक मानती रही, अब अंग्रेजी को मानती है।

भारतीय दिलो-दिमाग दिन-ब-दिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपना रहे हैं। एक दिन वे भाषाओं को जीवित रखने वाली लिपियों का भी विश्लेषण करेंगे। तब वे पाएंगे कि दुनिया में नागरी लिपि से अधिक वैज्ञानिक लिपि कोई दूसरी नहीं है। लगभग सभी भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि लिपि वही श्रेष्ठ है, जो ध्वनियों का कम से कम स्थान पर कम से कम अक्षरों में अविकल लेखन कर सके। प्रत्येक अक्षर के बोलने को, लिखने में हू-ब-हू उतारा जाए। जैसा बोला जाए, वही लिखा -पढ़ा जाए। कोई भी भाषा खराब नहीं होती, उसके लिखने-बोलने में अवैज्ञानिक भ्रष्टता हो सकती है। मेरी समझ में यह आता है कि पूरी दुनिया में जिस दिन एक वैज्ञानिक लिपि अपनाने की बहस चलेगी, भाषा चाहे जो हो, उस दिन देवनागरी लिपि को सबसे ज्यादा पसंद किया जाएगा। देवनागरी लिपि अगर अधिकतम वैज्ञानिक तरीकों में अपने को ढालती रही तो भाषा चाहे जो हो, पूरी दुनिया की लिपि, समझदारी के समय में देवनागरी होगी। रोमन लिपि, शब्द ध्वनियों को हू-ब-हू लिखने में कतई असमर्थ है। पूरी दुनिया की लिपि अगर एक हो जाए और भाषाएं अलग-अलग बनी रहें तो क्या हर्ज है? बाईसवीं सदी की भाषा में हो सकता है चीनी, अंग्रेजी और अफ्रीकी शब्दों की तादाद के साथ-साथ एशियाई देशों की शब्दावली कुछ ज्यादा बढ़ जाए, लेकिन लिपि अगर देवनागरी रहे तो भाषाएं ही नहीं, उनका उच्चारण भी सुरक्षित रहेगा। यह काम पहले भारतीय भाषाओं के भीतर भी होना चाहिए। अगर ऐसा होता है तो भारतीय भाषाएं अक्षुण्ण बनी रहेंगी।

कविता सांस्कृतिक राशन-पानी है, उसे हर व्यक्ति तक पहुंचना, पहुंचाया जाना चाहिए

कवि लीलाधर जगूड़ी का कहना है कि 'कविता और संपूर्ण साहित्य एक सांस्कृतिक राशन-पानी है। उसे हर व्यक्ति तक पहुंचना भी चाहिए और पहुंचाया भी जाना चाहिए। बहुत से व्यक्ति अपनी मानसिक बनावट को इतना सुधार या बिगाड़ लेते हैं कि उन पर किसी भी चीज का जल्दी असर हो जाता है या नहीं होता है। बहुतों पर देरी से असर होता है। कविता और साहित्य का असर भी इस तरह जांचा-परखा जा सकता है। हर कवि अपनी कविता के प्रति अधिकतम ग्राह्यता का भाव न होने से दुखी रहा है। भर्तृहरि को भी कहना पड़ा कि कुछ लोग बिना सींग-पूंछ के पशुओं जैसा जीवन जी रहे हैं, उनसे मेरी कविता संवाद करना चाहती है पर मैं उन्हें अभिव्यक्ति की तमीज का निर्णायक नहीं मानता। वह कहता है कि एक हजार बुद्धिमानों को एक साथ एक ही वक्त में समझाया जा सकता है लेकिन हो सकता है एक मूर्ख (जो अपने मन को बहुत सारी चीजों और जनाकारियों से परिस्थितिवश अथवा स्वयं के आलस्यवश दूर बनाए हुए है) को कई कोशिशों के बाद भी समझाना मुश्किल है। साहित्य में खासकर कविता की समझ स्वोपार्जित होती है। ज्ञान की सभी शाखाओं में व्यक्ति की अपनी उपार्जित पात्रता ही काम आती है। गणित की हो, चाहे कविता की, समझदारी कमानी पड़ती है। चित्रकला हो, चाहे कहानी और उपन्यास, इन्हें समझने की भी समझदारी तरह-तरह से अर्जित करनी पड़ती है। केवल किस्सा समझ लेना ही उपन्यास या कहानी समझ लेना नहीं है। इसी के लिए गालिब को कहना पड़ा कि - कोई बतलाए कि हम बतलाएं क्या? मीर को कहना पड़ा कि -बेहतर किया है मैंने इस ऐब को, हुनर से। तुलसी को तो यहां तक कहना पड़ा कि - मैं कवि नहीं हूं। कवि न होउं, नहिं चतुर कहाऊं। चतुर का अर्थ यहाँ चारों दिशाओं की समझदारी से है, केवल चालाक होने से नहीं। वे कविता के भी अनेक दोष-गुण मानते हैं। जो उन्होंने प्रभु भक्ति के लिए कहा है, वही कविता पर भी लागू होता है। बड़े भाग डर आवइ जासू। उसके बाद भी विचारकों की संगत जरूरी है। धूल भी हवा की संगति से आसमान चढ़ जाता है। वह बड़ी बेबाकी से कहते हैं कि - अच्छी हो, चाहे खराब, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती। मैं कोरे कागज पर इस बात की लिखत दे सकता हूं कि कविता संबंधी मुझमें एक भी विवेक नहीं है। फिर भी उन्होंने कवि और कोविद (विद्वान) को अलग-अलग श्रेणी में रखा है। इसमें संदेह नहीं कि बड़े-बड़े विद्वान हुए हैं पर उनमें से कवि कुछ ही हुए हैं।

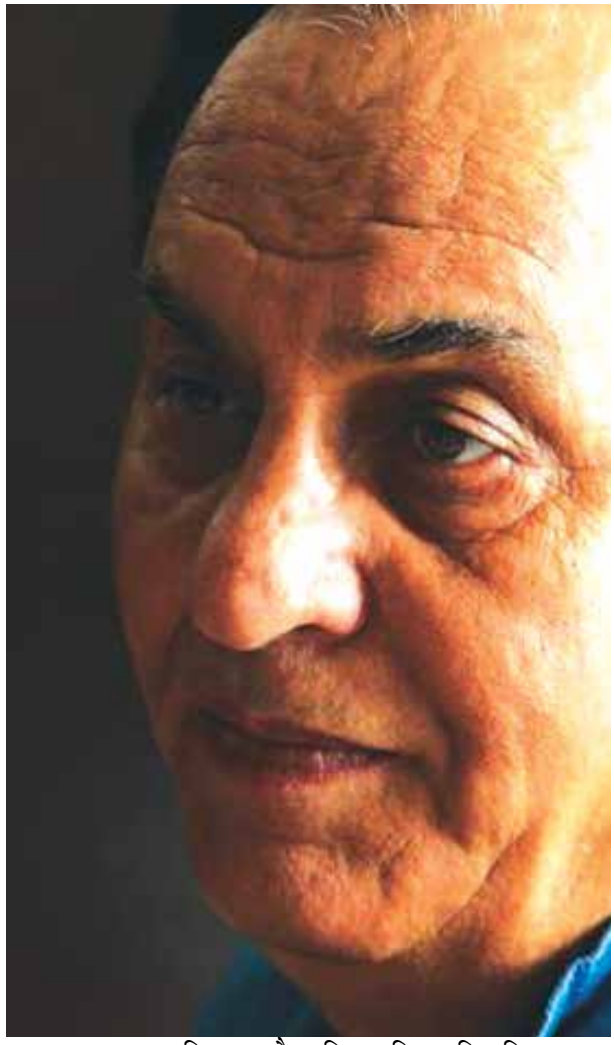

'कविता का भी अपना-अपना संस्कार होता है। उस संस्कार से जो कविता बाहर निकलती है, उसका संस्कारी लोग बहुत विरोध करते हैं। कविता हर युग में या किसी नयी परिस्थिति में अपना नया संस्करण लेकर आती है। भाषा अलग, बिम्ब, प्रतिबिम्ब और कथ्य अलग। भारतीय माइथोलॉजी में कविता का जन्म कविता कहने के लिए नहीं, कथा कहने के लिए हुआ है। कथाओं में भी सबसे पहले व्यथा की कथा कहने के लिए हुआ है। कविता भाषिक अभिव्यक्ति का चरम रूप है। कविता हमेशा कलावादी और रूपवादी रही है। फिर भी उसकी चेष्टा, संस्कार भंजन रूढ़िभंजन और मूर्तिभंजन की रही है। आज कविता अपने गद्य को अलग पहचान देने के संघर्ष से भी गुजर रही है मगर उसमें कोई क्रांत द्रष्टा प्रयोग लक्षित नहीं हो रहा है।

'जिनके पास जुबान नहीं है, उनसे भाषा के मर्म की बात करने का साहस भी कविता ही कर रही है। यह कहना कि कविता हर आम आदमी का विषय रही है, कुछ ज्यादती है। लेकिन यह भी सच है कि कविता ने इस अर्थ में अभिव्यक्ति का लोकतंत्र सबसे पहले स्थापित किया कि - हर कोई कविता के क्षेत्र में आपबीती कह सकता है। कविता में कभी यह श्रेणीबद्ध करने की कोशिश की गई कि कविता कैसी-कैसी होनी चाहिए और नतीजा यह हुआ कि हर बार कविता उन श्रेणियों से निकलकर जीवन के नए दुखों की ओर पलायन कर गई। कवि अपनी कविता के माध्यम से हर उस व्यक्ति तक जाना चाहता है, जो उस तक आना चाहता है। कविता की यह भी विशेषता होती है कि वह अपने पाठक के अनुरूप कुछ स्वाधीन अर्थ भी प्रवाहित करती है। कविता कोई ऐसी जन-सुविधा नहीं है, जो हरेक व्यक्ति तक रोजी-रोटी की तरह पहुंचाई जानी जरूरी हो। बल्कि जिसको कविता समझने या आत्मसात करने या यों कहूं कि कविता की जिसमें भी भूख होगी, वह अपनी कविता ढूंढेगा ही नहीं, रचेगा भी। यही कारण है कि न केवल कविता बल्कि कवि भी किसम-किसम के हैं। जिस पीढ़ी में, जितनी ज्यादा कविता लोगों तक पहुंचती है, उसमें उतने ज्यादा कवि होते हैं और कविता का स्तर उतना ही लापता हो सकता है, जितना भीड़ में कोई प्रिय व्यक्ति। कविता अगर दुर्लभ वस्तु मिलने का बोध नहीं कराती तो उसका होना न होना बराबर है। अगर कविता केवल वही बात कह रही है, जो अभिव्यक्ति के अन्य माध्यम कह रहे हैं तो फिर इस माध्यम की अलग से जरूरत क्या है? कवियों को एक अच्छी और अविस्मरणीय कविता के लिए बहुत परिश्रम और प्रतिभा की जरूरत होती है। संसार का स्वाध्याय जिसका जितना प्रबल होगा और कविता के हर स्कूल में से निकलकर आया होगा, वह व्यक्ति ऐसी अच्छी कविता कर सकेगा, जो लगे कि यह तो अज्ञात और अकथित है। कविता को भी सांप की तरह कायान्तरण के लिए केंचुल त्यागनी पड़ती है।'

मैं अकविता के कवियों को आईना दिखाना चाहता था, आलोचकों ने उसे पंतजी पर हमला करार दिया

जब कवि लीलाधर जगूड़ी से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं कि कविता की दुनिया में 'अकविता' जैसे शब्द का क्या औचित्य है, आप ने क्या समझकर महाकवि सुमित्रानंदन पंत की कविता का हिन्दी अनुवाद किया था, हिंदी के हिन्दी में अनुवाद से क्या अभिप्राय था, तो वह कहते हैं - 'औचित्य हो या न हो पर अकविता हिन्दी में सातवें-आठवें दशक (उन्नीसवीं सदी) का एक महत्वपूर्ण आंदोलन रहा है। नयी कविता की भाषा जब रूढ़ हो गई, तब दो काव्यान्दोलन एक साथ फूटे (1) साठ के बाद की कविता और (2) अकविता। एक ने अपने को कविता रहने दिया, दूसरे ने अपने आगे अ और जोड़ दिया। इस-अ- का मतलब एक तो शैली, शिल्प और कथ्य से असहमति थी, दूसरा अर्थ यह था कि कविता जैसी कविता नहीं बल्कि अगर इसे अकविता भी कहा जाय तो नवीनता के लिए यह अच्छा होगा। साठ के बाद कविता में कुछ नया, कुछ और नया की होड़ लग गई थी। इस नएपन के आग्रह के करण ही नई कविता का नया विशेषण भी कवियों को पुराना लगने लगा था। वे नहीं चाहते थे कि नवगीत की तरह वे पुराने ही गीतों के रूपाकार और तर्जेबयां को नवगीत आंदोलन कहें।

'अकविता ने प्रतिष्ठित शब्दों, बिम्बों और कथ्यों तक की हवा निकाल दी। कविता बुरी तरह पंक्चर हो गयी। लेकिन अकविता सिर्फ स्त्री केन्द्रित खिलवाड़ के नाम पर सीमित हो गई। रीतिकालीन कविता की तरह अकविता के अधिकांश कवि सारे विषयों को स्त्री की सेज पर निपटाने लगे। यह एक नयी रूढ़ि पैदा हो गई। तब फिर सबका ध्यान साठ के बाद की सिर्फ कविता के नाम से छपने वाली कविता पर ही केन्द्रित रहने लगा। यही कारण है कि कविता आज 21वीं सदी के दूसरे दशक तक अपने अनेक रूप-रंगों में फैलकर आगे बढ़ रही है। अकविता ने उस समय एक मोड़ का काम अवश्य किया लेकिन बहुत जल्दी उस मोड़ को एक बंद रास्ते में भी बदल दिया। अकविता की अच्छी कविताओं को साठ के बाद की कविता में शुमार कर लिया गया। यहीं हश्र नयी कहानी, अकहानी और समानांतर कहानी का भी हुआ। दोनों ही आगे चलकर कहानी हो गईं।

'आजादी' से पैदा हुई असुरक्षा, ऊब, भूख और गरीबी ने उस समय की युवा पीढ़ी को एक तरह से आजाद होने के विरुद्ध खड़ा कर दिया। धीरे-धीरे हड़तालों ने उत्पादन साधनों के अभाव और उनके महत्व की जानकारी को बढ़ाया। लाभ-हानि और केन्द्रित पूंजी द्वारा शोषण समझ में आने लगा। आजादी की भर्त्सना के स्वर आत्मनिरीक्षण में बदलने लगे। कविता की भाषा, कथ्य और प्रभाव-क्षेत्रों में तेजी से बदलाव आते चले गए। बदलाव की आकांक्षा केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं रही। बल्कि पारिवारिक बनावट की और रिश्तों की दुनिया में भी दिखाई देने लगी। नएपन का अर्थ ही बदलाव हो गया। कविता और कहानी उस समय के नवलेखन और समानांतर लेखन आदि की भी यही दशा-दिशा रही। आजादी के बाद का खद्यान्न अकाल बता रहा था कि रोटी सबसे बड़ी आजादी है। कविता में द्ररिद्रता, भूख, बेरोजगारी, असुरक्षा और आत्महीनता का भाव ज्यादा आने लगा। इसी को समकालीन भाव और यथार्थवादी स्वर माना जाने लगा। कविता नारे, उपदेश और वक्तव्य के करीब इस तरह पहुंच गई कि उनका यथार्थ लगने लगी।

'अकविता के कवियों से मेरा इतना भर कहना था कि शब्दावली पर ध्यान दिया जाए या आशय पर, शब्दावली का प्रयोग अंततोगत्वा किसी अर्थ को संप्रेषित करने के लिए किया जाता है। अर्थ को ही आशय यानी कि मतलब कहते हैं। सुमित्रानंदन पंत की कविता में जहां संस्कृत शब्दों का बहुलता से इस्तेमाल हुआ है, वहां उन्होंने जिन्दगी का कोई चालू सच भाषा के आवरण में छिपाकर पेश किया है। अगर उस भाषायी आवरण को हरा दिया जाए और उस आशय को आज की भाषा (शब्दावली) में प्रस्तुत किया जाए तो उसका अर्थ अकविता से अधिक बोल्ड हो जाता है। अगर स्त्री-पुरूष संबंधों की नग्नता को ही प्रतिपाद्य विषय मान लिया जाए तो उसमें पंत जी उन्नीस नहीं बीस बैठेंगे। पंत जी में

ज्यादा खुलापन है लेकिन उन्होंने उसे भाषा से ढंक रखा है। पंत जी की ऐसी कुछेक कविताओं का मुझे समकालीन हिन्दी में और समसामायिक कविता के मुहावरे में अनुवाद इसलिए करना पड़ा क्योंकि मैं यह बताना और जताना चाहता था कि अकविता कोई नया काम नहीं कर रही है। छायावादी और अन्य प्राचीन संस्कृत कवि तथा रीतिकालीन कवि वैसा काम अपने समय के भाषिक मुहावरे में कर चुके हैं। मैं अकविता के कवियों को आईना दिखाना चाह रहा था लेकिन कुछ लोगों ने उसे पंत जी पर हमला करार दे दिया। यह हाल है, हिन्दी में आलोचना के नाम पर होने वाली निन्दा की। मैं हिन्दी की आधुनिकतम आलोचना और समीक्षा से अपने लिए कोई नई दृष्टि नहीं पा सका हूं। यही समझ कर दिल को बहलाते रहे कि रचना भी आलोचना है। रचना का अंतर्मन दिखाने वाली कोई समीक्षा मैंने अपनी कविताओं की आज तक नहीं देखी। हो सकता है, मेरी रचनाओं में अंतर्मन हो ही नहीं।

'हिन्दी हर युग में अपने स्वरूप को बदल रही है क्योंकि वह जहां नहीं बोली जाती थी, भारत के उन हिस्सों में भी बोली जाने लगी है। इसलिए उसका शब्द भंडार, उच्चारण का स्वाद और ध्वन्यात्मक सौन्दर्य कई प्रकार का हो गया है। चेन्नई से मणिपुर, बंगाल से कश्मीर, केरल से हिमाचल और उत्तराखण्ड तक, कर्नाटक और राजस्थान, मध्यप्रदेश और आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र से असम और उड़ीसा तक हिन्दी का अपना-अपना बाजार और स्वाद है। नागालैण्ड, अरुणाचल और सिक्किम आदि क्षेत्रों की हिन्दी का स्वाद ही अलग आकर्षण रखता है। हिन्दी का नगा और सिक्किमी कवि प्रतीक्षित है। हिन्दी का हिन्दी में अनुवाद सामयिक होने के लिए हर युग में जरूरी लगने लगे, शायद तब बनेगी एक और नई हिन्दी।'

आधुनिक कविता ने मूल आशय और गद्य को अन्वय विहीन कर दिया है - जगूड़ी

कविता की विविधता में ह्रास के प्रश्न पर लीलाधर जगूड़ी कहते हैं- 'यह महत्वपूर्ण सवाल है। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। जब अनुष्टुप छंद का अवतार या आविष्कार हुआ था, उसके बाद से अपने कथ्य, विवेक और नएपन के लिए कवियों ने पिछले समय से अलग होने के लिए किसी न किसी नई लय और छंद की सृष्टि की। कभी छंद अंदाजे बयां के रूप में आया, कभी लय के रूप में, कभी वह वार्ता के रूप में आने लगा। कभी उसकी पंक्तियां तौली जाने लगीं, कभी मात्राएँ। कभी शब्दों में वर्णों की आवृत्ति से नए अर्थ के साथ लय के बावजूद श्लेष व कूट की संरचना की जाने लगी, अभिप्राय के बीज की रक्षा के लिए कविता के होने को सार्थक किया जाने लगा, कम कहकर ज्यादा समझने की प्रतिज्ञा से बुद्धि, स्मृति और विवेक की परीक्षा ली जाने लगी, कभी भाषा पर कवि के स्वाधिकार की परीक्षा के लिए आशु कविता का प्रचलन हुआ, कविता में जीवनानुभवों की समस्यापूर्ति का सवाल आ खड़ा हुआ तो कभी कविता आराध्य के गुणगान तक सीमित होकर अपना असीमित वर्चस्व फैलाती रही। सूरदास, कबीर और मीरा ने कवियों को महाकाव्य से अपने समय में ही मुक्ति दिला दी थी। फिर भी नरोत्तमदास ने खंड काव्य और तुलसीदास तथा जायसी ने महाकाव्य को परवान चढ़ाया। संस्कृत के कवियों ने नाटकों पर ध्यान दिया तो आधुनिक कवियों ने कहानियों और निबंधों पर भी जोर दिया। आधुनिक कवियों में कुछ कवियों ने संदर्भों के अनुकूल भाषा का अन्वेषण उतना नहीं किया, जितना साहित्य और संगीत की जुगलबंदी के नाम पर गाने-बजाने का काम किया। उन्होंने शब्द के निजी अर्थ से प्रवाहित होने वाले संगीत के स्थान पर अपने कंठ-स्वर को रख दिया। कविता में शब्द का संगीत और नाट्य उसके अच्छे पाठ से ही निनादित और संप्रेषित हो जाते हैं। शब्द, उच्चारण से ही नाद और नाट्यभिनय को प्रकट कर देते हैं। उसे बलशाली बनाने के लिए अलग से झांझ-मंजीरा और तबला-पेटी की जरूरत नहीं है। यह संगीत के शब्द के लिए जरूरी हो सकता है, कविता के शब्द के लिए नहीं। वैसे देखा जाय तो कौन सा शब्द और वाक्य ऐसा है, जिसे गाया न जा सकता हो। गायन में आवृत्ति और टेक का महत्व है, कविता में शब्दार्थ की संगति और असंगति से एक वैचारिक संगीत पैदा किया जाता है। इसके लिए भाषा के अलावा किसी अन्य उपकरण की सीधे जरूरत नहीं पड़ती। भाषा में ही सारा आंगिक और मानसिक अभिनय छिपा हुआ रहता है।

'छंदों और लयों की सामर्थ्य और सीमा जब कविता में एकरसता पैदा करने लगी तो कवियों ने कविता के लिए तरह-तरह की शब्द भंगिमाएं और कथन व लेखन भंगिमाओं का बहुत जोर है। आधुनिक कविता ने मूल आशय और गद्य को अन्वय विहीन कर दिया है। संस्कृत साहित्य में किसी भी छंद में निस्सरित श्लोक को समझने के लिए पहले उसका अन्वय (गद्य-वाक्य करण) करना पड़ता है। इससे भी भावकों को इसे ग्रहण करने में कम बाधाओं और बौद्धिक व्यायामों का सामना नहीं करना पड़ा। काव्य कूटता ने उसकी जटिलताओं को और बढ़ा दिया। शिल्प का रहस्य ही प्रस्तुति का सौन्दर्य बन गया। आधुनिक कवियों ने भाषा के मूल तत्व, गद्य की लय को, अपना साध्य बनाया है। यह कवि की सामर्थ्य, अध्ययन, अनुभवऔर प्रायोगिक चेतना पर निर्भर करता है कि वह कविता के गद्य को अन्य गद्यों से किस तरह अलग बनाए रखता है। रखता भी है या नहीं। आज गद्य के जितने रूप हमारे सामने हैं, पहले नहीं थे। गद्य का अन्वयाश्रित कविता रूप ही पहले हमें संश्लिष्टता का उत्कृष्ट नमूना लगता था। अब संक्षिप्तीकरण के कई अन्य मितभाषी तरीके कविता ने पैदा कर लिए हैं। समीक्षकों का ध्यान शब्द-संगठन, वाक्य-संरचना, कथन-भंगिमा और अर्थ के तेवर की ओर नहीं जा रहा है। आलोचना अपनी रूढ़ि का शिकार हो रही है। कविता के शानदार और जानदार प्रयोग ही आलोचना को एक नया 'समझ शास्त्र' बनाने की प्रेरण देंगे। अच्छी कविता में अभिव्यक्ति केवल प्रकटीकरण के लिए ही नहीं होती बल्कि कुछ गूढ़ आशयों को छिपाने के लिए भी होती है ताकि जिन खोजा-तिन पाइयां, हो सके। सभी एक और आलोचक उसी अकथित को अर्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष अनुभव की तरह प्रस्तुत करते हैं। उसे ही 'निगूढ़' तत्व कहा जाता है। कुछ छिपाने के लिए

कुछ कहना और दिखाना पड़ता है। निगूढ़ तत्व की खोज ही अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को निरावृत्त करने की शक्ति देता है। कितनी कविताओं में वह निगूढ़ तत्व विद्यमान है? अगर है, तो वे कविताएं बहुत जीएंगी।

'आज टेढ़ी-मेढ़ी पंक्ति में लिखने को कविता का शिल्प मानकर कुछ लोग लिख रहे हैं- इससे कविता को नुक्सान उठाना पड़ रहा है। कोई कविता चाहे सीधे-सीधे लिखी गई हो लेकिन उसमें कविता तो होनी चाहिए। इसलिए मात्र शिल्प और छंद को ही कविता नहीं माना जा सकता। बात बोलेगी ... भेद खोलेगी बात ही।'

जो कुछ भी जीवन में है, साहित्य में वह न त्याज्य है, न वर्जित

लीलाधर जगूड़ी का कहना है कि साहित्य में वह कुछ भी त्याज्य या वर्जित नहीं है, जो जीवन में है। वर्जना पैदा होती है धार्मिक आग्रह से, कानूनी पक्ष से, श्लील-अश्लील और नैतिक-अनैतिक आग्रहों से। इसके अलावा पसंद-नापसंद से भी वर्जनाएं पैदा होती हैं। वैचारिक आग्रहों की भी वर्जनाएं रही हैं।

साहित्य जीवन की प्रतिक्रियात्मक अनुकृति है। कभी वह छाया-प्रति का काम करता है, कभी प्रतिबिम्ब का, कभी वह जीवन और घटनाओं का भाषिक अनुवाद या प्रस्तुतीकरण बन जाता है। साहित्य चूंकि उत्तर ढूंढने के लिए कुछ नए सवाल भी पैदा करता है, इसलिए कुछ लोग ग्राह्यता और त्याज्यता का प्रश्न भी वर्जनात्मक ढंग से उठाते हैं। हर स्वीकार्य और अस्वीकार्य की अपनी-अपनी वर्जनाएं हैं। साहित्य भले ही कलम का विषय माना गया है लेकिन भाषा कैमरे की तरह काम करती हैं। न कैमरा अश्लील है, न घटित दृश्य। वह अनैतिक हो सकता है लेकिन झूठ नहीं। और जो झूठ नहीं है, वह वर्जित कैसा?

कविता अपने अनुभव के लिए शब्दों का नया प्रसव करती है। तभी किसी कवि की काव्य भाषा अन्यों से अलग बन जाती है। कभी कवि अनुमान से शब्द गढ़ता है, कभी तर्क से। तभी वह न्याय से सौंदर्य तक पहुंच जाता है। कविता में कभी-कभी कोई शब्द पूरे वाक्य का काम करता है, कभी कोई मोड़ ही स्थिति को ध्वनित करने का कारण बन जाता है।

कोई लेखक कवि भी हो सकता है लेकिन हर कवि लेखक होता है। कोई लेखक सिर्फ लेखक होता है, कवि नहीं। कवि होने के लिए बहुत से वर्जित क्षेत्रों में जाना पड़ता है। न देखने लायक को देखते हुए न रहने लायक में रहते हुए, अगम्य में से गुजरते हुए, स्वयं अपने आचरण से असहमत होते हुए अपनी संस्कृति से मनुष्य सिद्ध होने की जहमत से रू-ब-रू होना पड़ता है। व्यास की तरह या कालिदास की तरह बुद्धि के जारज पन से टकराते हुए स्वयं की नियति और पूरे मानव समुदाय की नियति के बीच अभिव्यक्ति का चीत्कार पैदा करना पड़ता है। व्यास की तरह अपने समय के भोग-संभोग, युद्ध और प्रेम की चारित्रिक विकलताओं और विफलताओं के बीच संपूर्ण क्षतिग्रस्त मानवता का, उसकी नीचता और उदात्तता के साथ अनुसंधान करना पड़ता है। स्वयं अपने सच और झूठ का शिकार होना पड़ता है। व्यास की तरह दूसरों के घोंसलों में अंडे देने की सजा भोगनी पड़ती है। कवि को सबके अपराधों की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। मानवता का किया-धरा सब कवि को लगता है कि मेरा किया-धरा है। कवि का स्रष्टापन इतना व्यापक है।

व्यास ने न अपने पिता होने का कर्म छिपया, न अपनी माता सत्यवती का और न अपना शुकदेवत्व छिपाया। दुर्याधन से महाभारत में जो कहलवाया, वह परिस्थितिजन्य सत्य सब पर लागू होता है। धर्म क्या है, यह भली-भांति जानता हूं लेकिन उधर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। इसी तरह अधर्म को भी भली-भांति जानता हूं लेकिन उससे मेरा छुटकारा नहीं 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जनाम्यधर्म न च मे निवृतिः।'

कुछ वर्जनाओं और सर्जनाओं में परिस्थितिजन्यता का शिकार होने के लिए कवि-लेखक सबसे पहले अपने ही अकल्पित अभीष्ट के लिए अभिशप्त है। व्यास ने तमाम स्त्रियों का वर्णन किया, धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर जैसी यत्र-तत्र प्रक्षिप्त संतानों के मानवीय-अमानवीय युद्ध, प्रेम, न्याय और शांति के अनेक दुश्चक्र बताए, लेकिन अपनी पत्नी अर्थात अपने स्मृतिवान पुत्र शुकदेव की ममता का ठौर-ठिकाना और जीवन नहीं बताया। यहां तक कि कभी उसका नाम भी नहीं लिया। महाकवि की ऐसी भूलें नैतिक या अनैतिक किस खाने में रखी जाएंगी। शुकदेव भी कहीं किसी अगम्य गमन से तो पैदा नहीं हुए थे?

मानवीय मूल्य और नैतिकता के घाव आदिकाल से ही, सबसे ज्यादा कविता ने ही झेले और भरे हैं। इसलिए साहित्य सर्जना में वर्जनाओं का अनुपालन और उद्घाटन भी रचनाकार का एक संकट रहा है। फिर भी इसमें श्रेष्ठ कृतिकारों ने अनेक निकृष्टताओं के बावजूद पार पाया है। उन्होंने यश-अपयश की परवाह नहीं की। अनैतिकता देख कर या महसूस करके ही नैतिकता समझ में आती है, अन्यथा नैतिकता उपदेश लगने लगती है। नैतिकता के विरोध या अनुरोध से कहीं ज्यादा उसका अहसास, सहित्य, कैमरा बनकर ही करा सकता है। श्रेष्ठ नैतिक दृष्टि वह है, जो खुद के अनैतिक होने को विवेचित कर सके।

आज मनुष्य समाज प्राकृतिक स्थितियों से संवैधानिक स्थितियों तक आ गया है। सुशासन हो या न हो पर स्व-शासन की स्थितियाँ कुछ बेहतर हुई हैं। स्वतंत्रता में मनुष्य अब 'सुतंत्र' भी ढूंढने लगा है। मनुष्य को अच्छे मनुष्य होने के सारे सूत्र चाहिए। रामसूत्र, कामसूत्र, पाणिनिसूत्र, और भी जितने मंगल सूत्र हो सकते हों, सब मनुष्य के अभीष्ट हैं। साहित्य, मनुष्य के ऊर्णनाभ (मकड़ा) चरित्र को उसके सारे रचनात्मक सूत्रों सहित अंकित करता रहा है।

'प्रसाद, निराला की तरह नया मोड़ देने वाले कवियों को ही मैं अपना आदर्श मानता हूं'

जीवन और साहित्य के विविध पक्षों पर सविस्तार बातचीत के दौरान लीलाधर जगूड़ी से यह भी जानने की कोशिश की गई कि वह किन

कवियों से प्रभावित हैं, रहे हैं, और - किसी को अगर अपना आदर्श माना है, तो क्यों? वह कहते हैं - 'जैसे कल के दिन से कल का दिन पैदा होता है, जो कि भविष्य और वर्तमान दोनों का प्रतिनिधित्व करते हुए अतीत में शामिल हो जाता है, शायद इसी तरह नया कवि भी पिछले कवियों के कारण ही जन्म ले जाता है। फिर उसे अखंड समय में से ऋतुओं, मौसमों और पखवाड़ों की तरह निजी रूप में हर बार अलग होना पड़ता है। समय से समय को अलग करके - किसी काम में लगाना, समय को अपने ढंग से रचने की शुरूआत कराता है। काल-कवलित हो रहे लोगों के बीच में कालबोध कहीं न कहीं जीवन बोध का ही हिस्सा है। जीवन बोध और उसका कविता बोध दो अलग स्थितियाँ हैं। जीवन बोध, आत्मबोध तक सीमित रह सकता है लेकिन 'कविता बोध' मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक भाषा- बोध से भी जुड़ा हुआ है। तब कविता केवल एक विधा के रूप में ही नहीं जांची जानी चाहिए बल्कि वह संपूर्ण मानवीय यात्रा और मनोविज्ञान की अद्यतन स्थिति तक भी परखी जानी चाहिए। मनुष्य, इतिहास, भूगोल और अखिल ब्रह्माण्ड तक कविता का कथ्य कुछ भी हो सकता है। कविता के मर्म को केवल उसके शिल्पगत सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं रहने देना चाहिए। अगर कविता अच्छी है तो उसकी और भी सार्थक-संभावनाओं को देखा जाना चाहिए। यह काम शायद आलोचक का हो लेकिन इधर यह देखा गया है कि अच्छी कविताओं की अच्छी और मार्गदर्शी व्याख्या सिर्फ कवियों और अन्य विधाओं के रचनाकारों ने की है। विधाओं का झगड़ा नहीं है, झगड़ा है अक्षम, अकुशल और अरस अभिव्याक्ति का। विधाएं सब एक-दूसरे की पूरक हैं।

'मैं सूर, कबीर, तुलसी, और जयशंकर प्रसाद से ज्यादा प्रभावित हुआ हूं। उनका प्रभाव क्षेत्र आज भी अपनी तरह का है। आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, दिनकर और अज्ञेय से बहुत प्रभावित हुआ। राजकमल चौधरी और धूमिल तो मेरे समकालीन अग्रज थे। उनसे मुलाकातें भी थीं और प्रतिस्पर्धा भी। सीखने क लिए मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय और नागार्जुन तथा शमशेर बहादुर सिंह भी परिहार्य नहीं हैं। जो नाम छूट रहे हैं, उनकी भी किसी न किसी विशेषता को अगर मैं याद करूं तो प्रभावित रहा हूं। मैं राजस्थानी कवि मेघराज मुकुल से भी प्रभावित रहा हूं। कवियों का प्रभाव दरअसल भाषा और शब्द के सटीक प्रयोग का प्रभाव है। अनुभव की वस्तुगत स्थिति को अमूर्त बनाने में कवि सिद्धहस्त होते हैं और बहुत से अमूर्त को भी अति यथार्थ तक पहुंचा देते हैं। दोनों ही चुनौती पूर्ण हैं।

'बड़ी चीज है, अपने लिए अपनी काव्य भाषा बनाना। समकालीन और स्थापित काव्य भाषा का इतना दबाव रहता है कि उससे छुटकारा पाना बड़े कवियों के वश का ही अक्सर दिखता है। अच्छी कविताएं अक्सर अपने प्रभाव में लेकर किसी भी कवि को लकीर का फकीर बना सकती हैं। कवि होना तभी सार्थक है, जब वह दूसरे कवियों जैसा न हो। वह दूसरे व्यक्तियों जैसा तो होगा ही लेकिन कवि के रूप में अद्वितीय कविता की सृजन क्षमता का उदाहरण पेश कर चुका हो या कर रहा हो। इधर, कवियों ने कथ्य गढ़ने छोड़ दिए हैं। इससे भी एकरसता बढ़ी है। एक ही तरह के संदर्भों और एक जैसी समस्याओं से जूझती कविता एकरसता की शिकार होने से कब तक अपने को बचा सकती है? मैं अक्सर कहता हूं कि पद्य में जिस तरह रघुवीर सहाय ने आधुनिक युग में 'रामदास' कविता लिखकर दिखाई उस तरह किसी और छंद का प्रबंध करके कोई कवि किसी अन्य तरह के नये विषय को क्यों नहीं रच सकता? पुराने पैटर्न को एक नई विषय वस्तु दी है रघुवीर सहाय ने। सूरदास, कबीर, तुलसी और प्रसाद में जो विषय वस्तु और भाषागत भिन्नता है, वह केवल समय की दूरी के कारण नहीं है बल्कि अपने समय और अपनी सोच के कारण भी है। जो मुहावरे सूर के हैं या उन्होंने रचे हैं, उन्हें कबीर ने बहुत कम छुआ है। तुलसी ने भी कबीर की काव्य भाषा को हाथ नहीं लगाया। चौपाई छंद के प्रयोक्ता मलिक मोहम्मद जायसी और तुलसी की चौपाई तथा अवधी में उतना ही अंतर है, जितना कि इन सबसे हटकर नरोत्तम दास में उल्लेखनीय अलगाव दिखाई देता है। कभी-कभी मंतव्य एक हो सकता है लेकिन काव्य-भाषा का पार्थक्य, अर्थान्तर ही नहीं व्यक्तित्वांतर भी उपस्थित कर देता है। एक समय के होते हुए भी अज्ञेय और विजयदेव नारायण साही की कविताओं में तगड़ी भिन्नता है। एक ही समय के होते हुए भी केदारनाथ अग्रवाल और विपिन कुमार अग्रवाल की कविता नितांत भिन्न है। त्रिलोचन शास्त्री और कुंवर नारायण की कविता दो ध्रुवों जैसी स्पष्टतः अलग दिखाई देती है। अलग होने के लिए सबके पार्थक्य से अवगत होना पड़ता है। वरना भूतपूर्व कवि आपको हल्दीघाटी से बाहर नहीं आने देंगे। प्रसाद जैसी प्रतिभा चाहिए महाकाव्य के ढांचे को तोड़कर अपने काव्य को रचने की। भारतीय माइथालॉजी में मोक्ष प्राप्त करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता लेकिन कविता के क्षेत्र में पूर्व कवियों और समकालीनों से भी मोक्ष प्राप्त करने के बाद ही नये कवित्व का जन्म हो पाता है। नये कवित्व के कारण ही कोई नया कवि कहला सकता हैं, उम्र में नए होने मात्र से नहीं। मैं नया मोड़ देने वाले कवियों को ही आदर्श मानता हूं। प्रसाद ने भी मुक्त छंद में काम किया पर निराला ने उसे नई शक्ति दे दी।'

'शब्द-संवाद' के अंतर्गत ख्यात कवि-साहित्यकार के साक्षात्कार प्रकाशित किए जाते हैं। इस स्तंभ में प्रकाशनार्थ स्वतंत्र लेखन का भी स्वागत है। इस विषय में बातचीत के लिए फोन (7983168101) अथवा पत्रिका के ई-मेल पर भी संपर्क किया जा सकता है।

मधुकर अष्ठाना

लिख न सके हम सत्तर सालों में अपनी तकदीर।
सारे जग की खैर मनाते हम रह गए फकीर।

बाबा ने जो दी कामरिया
चढ़ा न दूजा रंग,
बीत गया अब तक का जीवन
गाते वही अभंग,
छोड़ गए सब नाते-रिश्ते खाली हाथ कबीर।

हुआ मूल्य की सीता का अपहरण
वसूल लजाए
राम रह गए मजबूरी में
सारे स्वप्न पराए
गई अनय के हाथों में आशाओं की जागीर।

भिड़ा जटायू टिक न सका
पर चंद्रहास के आगे,
सहयोगी ग्रह-नक्षत्र छोड़कर
अधरस्ते से भागे,
रही मुक्ति की अंतिम क्षण भी आंखों में तस्वीर।

(संपर्क - 9450447579)

श्रीधर आचार्य

बहुत दिनों से लिखा नही कुछ
रोज-रोज के भले बुरे का।
सोचा कुछ सम्पुट लिख डालूँ
खोटे और खरे का।

संकल्पों का शिलान्यास
कर हरियाली छितराई,
चाटुकारिता करतब करती
भाग गई हरजाई,
नई पहेली समझ न पायी
संकेतों में उलझी
बहुत देर से टपक रहा है
शोर ही भिनसारे का।

सुन्दरता की बात नहीं
अब हीरामन करता है,
रूप मंत्र की बातें सुनता
बस आहें भरता है,
खामोशी तो सहमी-सी ही
अब हमको दिखती है
सन्नाटे में उभर रहा स्वर
जैसे इकतारे का।

(संपर्क-9977559161)

हरिशंकर सक्सेना

बढ़ रही तम की धुएं से मित्रता,
सूर्य का रथ इस दिशा में लाइए।

'कीचकों' के हाथ लंबे हो गए
खेत में कंकाल फिर वे बो गए
फंस गए हैं कृष्ण किस जंजाल में
अब सुदर्शन चक्र ही चलवाइए।

प्रश्न फिर विकलांग होते जा रहे
उत्तरों के जुल्म उन पर ढा रहे
इस कदर लाचार तेवर देखकर
'सव्यसाची' की कथा दुहराइए।

टूटते संदर्भ जलते उम्र भर
मौन सम्बोधन लहू से तर-ब-तर
पीठ पर आघात की पीड़ा असह
आप कुछ तो आकलन करवाइए।

(संपर्क - 9760783993)

पूरन सरमा

जाने कब थे हंसे जनाब।
अब मुश्किल में फंसे जनाब।

अपनों ने ही घात किया है,
अब नागों से कसे जनाब।

चहल-पहल तो अच्छी खासी,
पर जंगल में बसे जनाब।

जिनको लेकर साथ चले थे,
अब उनको ही डसे जनाब।

क्या होगा इस नयी सदी का
रोते-रोते हंसे जनाब।

(संपर्क - 9828024500)

डॉ कृष्ण कुमार प्रजापति

बदले जो रंग-रूप वो चेहरा नहीं हूं मैं।
टूटा हुआ जरूर हूं, बिखरा नहीं हूं मैं।

कांटों ने कर दिए मेरे तलवे लहूलुहान,
घुटनों से चल रहा हूं कि ठहरा नहीं हूं मैं।

शिद्दत की प्यास है तो चले आओ मेरे पास,
दरिया-ए-बेकिनार हूं, सहरा नहीं हूं मैं।

हालात ने घटाई है कीमत तो क्या हुआ,
यारों की तरह आज भी सस्ता नहीं हूं मैं।

ऐ दोस्त, आज भी तू गलफहमियों में है
जैसा समझ रहा है तू, वैसा नहीं हूं मैं।

मां, बाप ही 'कुमार' नहीं मेरी पीठ पर
भाई भी मेरे साथ हैं, तन्हा नहीं हूं मैं।

(संपर्क - 9437044680)

डॉ. ओरीना अदा

दुश्मन भी नहीं, मेरा तरफदार भी नहीं।
दीवाना नहीं दिल मिरा हुश्यार भी नहीं।

उफ उनकी वो खमूशी कि इन्कार भी नहीं,
उल्फत है मगर होंठों पे इकरार भी नहीं।

भूखों का पेट भर दे सियासत के सेह से,
दुनिया में कोई ऐसा चमत्कार भी नहीं।

उन रोजेदारों का भी रखा कीजिए ख्याल
जिनको नसीब सेहरी ओ इफ्तार भी नहीं।

अहले कलम ब जोर ए कलम अद्ल के लिए
लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार भी नहीं।

मजबूर नहीं हूँ मुझे तस्लीम है मगर
खुद अपने दिल तलक की मैं मुख्तार भी नहीं।

तूफान ए जिंदगी में मैं इक ऐसा सफीना हूँ
जिसका न कोई मांझी है, पतवार भी नहीं।

आंखों से कत्ल करने की उफ उनकी वो 'अदा'
मकतूल कोई उनसे खबरदार भी नहीं।

(सेहर - जादू, अद्ल - इंसाफ)
(संपर्क - 9713222582)

प्राण शर्मा

खुशबुओं को मेरे घर में छोड़ जाना आपका।
कितना अच्छा लगता है हर रोज आना आपका।

जब से जाना, काम है मुझको बनाना आपका,
चल न पाया कोई भी तब से बहाना आपका।

आते भी हैं आप तो बस मुँह दिखाने के लिए,
कब तलक यूँ ही चलेगा दिल दुखाना आपका।

क्यों न भाये हर किसी को मुस्कराहट आपकी,
एक बच्चे की तरह है मुस्कराना आपका।

मान लेता हूँ चलो मैं बात हर इक आपकी,
कुछ अजब सा लगता है सौगंध खाना आपका।

क्यों न लाता मँहगे- मँहगे तोहफे मैं परदेस से,
वरना पड़ता देखना, फिर मुँह फुलाना आपका।

बरसों ही हमने बिताए हैं दो यारो की तरह,
'प्राण' मुमकिन ही नहीं अब तो भुलाना आपका।

कुमार शैल

देश का मान-गौरव घटाना नहीं।
वीर तुम यह तिरंगा गिराना नहीं।

आन पर, बान पर, मान पर, देश के,
सर कटे तो कटे सर झुकाना नहीं।

रास्ते हों कठिन चाहे तूफाँ बड़े,
पाँव पीछे कभी तुम हटाना नहीं।

कर रहे हैं हवाले तुम्हारे वतन,
कायरों की तरह लौट आना नहीं।

देश या जान में एक चुनना पड़े,
देश की शान को भूल जाना नहीं।

दुश्मनों को चटानी पड़े धूल तो
वक्त बेकार में यूँ गवाँना नहीं।

है हवाले वतन के गुजारिश यही,
दोस्ती, दुश्मनों से निभाना नहीं।

'शैल' सच्चे सिपाही अमन के बनो,
मुफलिसों को कभी तुम सताना नहीं।

(संपर्क- 9919805243)

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

सभी तो राह भूले हैं, नहीं रहबर नया आया।
किसी भी रोग का कोई न चारागर नया आया।

अभी भी गूँजते हैं प्रश्न लाखों इन हवाओं में,
किसी भी हादसे का क्यों न कुछ उत्तर नया आया।

मुहब्बत कत्ल करने की हुई हैं साजिशें लाखों,
बचाने को मगर हर बार पैगम्बर नया आया।

कहीं है कत्ल-खूरेजी, कहीं बम के धमाके हैं,
नजर में अम्न का अब तक न वो मंजर नया आया।

निरंतर खुल रहे हैं मॉल, होटल, क्लब,
कसीनो, पब,
हमारे शह्र में ये कौन सौदागर नया आया।

बजाकर डुगडुगी वादों की वो मजमा
लगाता है,
चुनावों में है शायद कोई बाजीगर नया आया।

न जाने बँट रही हैं कब से अपनों को
ही रेवड़ियाँ,
करो ऐ 'जीत' कोशिश तुम भी,
ये अवसर नया आया।

(संपर्क-9760007838)

प्रेमनाथ मिश्र

झूठ जब लगती हकीकत दोस्तो।
हर कदम पर है मुसीबत दोस्तो।

कौन सुनता बात जनता की यहाँ,
हो गयी बहरी सियासत दोस्तो।

बन गया हैं पाप उनका धर्म अब,
हम करें किससे शिकायत दोस्तो।

काटते हैं जो मलाई मुफ्त की,
वो करेंगे क्यूँ बगावत दोस्तो।

होड़ दौलत की जहां में है मची,
कर रही गुरबत मशक़्क़त दोस्तो।

झल्म देखो बिक रहा बाजार में,
बढ़ गयी इतनी तिजारत दोस्तो।

वो जिन्हें मालूम कुछ भी है नहीं,
दे रहे सबको नसीहत दोस्तो।

काम कोई भी यहाँ मुश्किल नहीं,
जब खुदा की हो इनायत दोस्तो।

प्रेम का दस्तूर गर कायम रहे,
हो गयी समझो इबादत दोस्तो।

(संपर्क-9628177818)

डॉ. लवलेश दत्त 'पवन'

जैसे लम्हा भी इक सदी गुजरा।
इस तरह वक़्ते-तिश्नगी गुजरा।

खुद को भी जब भुला दिया मैंने,
नाम लब से तिरा तभी गुजरा।

जितने भी हमसफर मिले मुझको,
करके हर शख़्स रहजनी गुजरा।

हिज्र के वक़्त में मेरे हमदम,
करके सावन भी दिल्लगी गुजरा।

जिसको माना है मैंने अपने पवन,
करके वह शख़्स बेरुखी गुजरा।

(संपर्क - 9412345679)

राकेश कुमार श्रीवास्तव

सच कहने पर कहाँ भलाई होती है।
और झूठों के हाथ मलाई होती है।

अच्छा माल कमीशन में पिट जाता है,
घटिया की जमकर सप्लाई होती है।

सारे नियम शिथिल होकर रह जाते हैं,
जब दबंग की जेल मिलाई होती है।

बारूदों से उनकी यारी ठीक नहीं,
हाथ में जिनके दियासलाई होती है।

खोटे सिक्के वहीं चलन में आते हैं,
सरकारों की जहाँ ढिलाई होती है।

सीवन गर उघड़े तो फिर सिल जाती है,
उखड़े मन की कहाँ सिलाई होती है।

(संपर्क-9977527170)

राही भोजपुरी

संभलना जरा सर उठाने से पहले।
ये नफरत की फसलें उगाने से पहले।

गिरेबां में खुद झांककर पहले देखो,
किसी और को आजमाने से पहले।

तुम्हारा भी घर क्या बचेगा, ये सोचो,
पड़ोसी के घर को जलाने से पहले।

ये आफत की बारिश का अंदाजा कर लो,
सलीके से घर को सजाने से पहले।

करो खुद को महफूज गर कर सको तो
जहां में कयामत को लाने से पहले।

परख तौल लो अपनी ताकत को 'राही',
बगावत के रस्ते पे जाने से पहले।

(संपर्क- 0761-2801718)

डॉ. मनोहर अभय

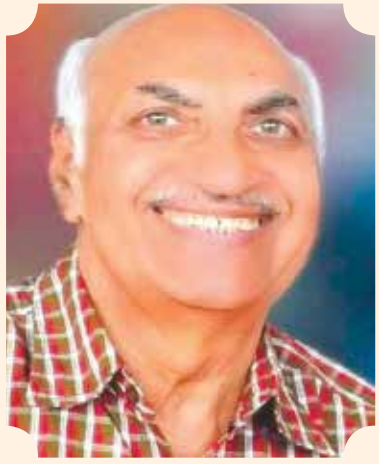

शीश उठाए जा रहे, कुछ जहरीले नाग।
ठंडी क्यों पड़ने लगी, नाग यज्ञ की आग।।

धूम्रपान पर बंदिशें, सुरापान है बंद।
पनवाड़ी से लीजिए, गुटके में गुलकंद।।

भूल गए हम तो सखे, पानी की पहचान।
ये गंगाजल पी रहे, छान-छान कर छान।।

धूप तुम्हें इतनी मिली, बैठे परदे डाल।
सिमटे ठिठुरे हम पड़े, कुहरे में बेहाल।।

बरस रहीं रवि रश्मियाँ, करती धूप नहान।
हर चेहरे पर देखना, मैं चाहूँ मुस्कान।।

सखे दुशाले बँट रहे, जगे दीन के भाग।
चूल्हा हम से पूछता, कब सुलगेगी आग।।

घर से जब बाहर हुए, करते हाहाकार।
लगे तोड़ने सीढ़ियाँ, पुख्ता दर दीवार।।

बेला फूला रात भर, महका खूब गुलाब।
भौंरे सरसिज में फँसे, रहे देखते ख्वाब।।

राखी में लिपटी मिली, मृदुल प्रीति की गंध।
वैभव बहनों का बढ़े, औ मीठे सम्बन्ध।।

साँकल टूटी सदन की, गलियारे हैं तंग।
सजन तमाशे कर रहे, हंगामों के संग।।

दाना पानी चाहते, थोड़ा ठौर ठिकान।
बधिक बाण मत मारना, पंछी हैं नादान।।

गतिरोधक दुर्गति करें, जगह-जगह ठहराव।
मंथर गति मंदाकिनी, कैसे बढ़े बहाव।।

सुनो भगीरथ चल पड़े, सुरसरिता के साथ।
बीच राह गंगा लुटी, जैसे लुटे अनाथ।।

पानी बरसा रात दिन, नदिया उठे उफान।
एक बून्द को तरसते, ये चातक नादान।।

सुनो धरा की धड़कनें, ऋतुओं के संवाद।
चन्दन धोये पवन से, करो न वाद-विवाद।।

(संपर्क - 9167148096)

अनवर सुहैल

जाने किन खबरों के लिए
पलटता हूं अखबार के पन्ने
जाने किन दृश्यों के लिए
बदलता रहता हूं टीवी के चैनल

और फिर उकता कर
सोशल साइट्स पर
लाइक्स और कमेंट्स के खेल में
कालातीत हो जाता हूं
शायद यही समाधि की दशा कहते हैं
आत्मोत्थान या आत्मोत्सर्ग की दशा
ये दोनों अवस्थाएं आत्महंता होती हैं
क्या आने वाली पीढ़ियां
भागती रहेंगी जनसरोकारों के
बेशुमार सवालों से
कि हर किसी के मन में
सवाल पनपना बगावत की अलामत है
हुकूमतें सवालों और सवालियों से
चिढ़ती बहुत हैं
तुम्हें मालूम होना चाहिए

गली-गली घूम रहे पालतू खूंखार कुत्ते
नए सवालों की गंध सूंघकर भूंकते
मालिकों को खबर क्या देना
इजाजत है सो पहले चहेटते
फिर भंभोड़ डालते इस तरह
कि चीख-पुकार, फरियाद सब
बेअसर हो जाएं
सियासत की इतनी पैंतरेबाजी के बाद भी
समय के पन्ने पर
दर्ज हो गई एक कविता
और मजे की बात
कि इतनी घुटन के बाद भी
जी गई कविता ।

(संपर्क-9907978108)

अम्बर रंजना पाण्डेय

भृंगराजों के झुण्ड में शिकार करता
आ बैठा है टाकाचोरों का कुटुंब
देखना अशुभ है निमीलित आँखों से
कहता है शैलेंद्र
'कौआ है रे' अज्ञानी जन कहते हैं
'टाकाचोर टाकाचोर'
कहकर दौड़ता जाता है शैलेंद्र
आँखों को करतलों से ढँके
प्रातः निपटा चुका है बसंतों की पंगत में
निम्बोरियों के ढेर
उड़ती दीमकें खा चुका सकल
कितने पक्षियों के अण्डे खाकर
अब भृंगराजों के दल में यह
भुखमरा क्या खाने आया है
लग्गा लेकर टाकाचोर का नीड़ उजाड़ने को

टॉर्च से खोज रहे है शैलेंद्र के पापा
सब ओर साँय साँय है
'टाकाचोर के रहते कोई और गृहस्थी नहीं कर सकता'
'भरी रात्रि क्यों किसी का नीड़ नष्ट करते हो
भीतर गरम कम्बल में जो
नष्ट नीड़ पढ़ते थे, वही जाकर पढ़ो न '
साँय साँय है टाकाचोर का जरा अंदेसा नहीं
प्रातः ही फिर स्वर किया, शर्करा
तो जल में ही घुलती है
तब वायु में कैसे घुलकर स्वर हो गई
'को कि ला को कि ला को कि ला '
श्रीमद्अमरसिंह ने शब्दकोश बनाने में
शताब्दियों पूर्व
कर दी थी बड़ी भारी मिस्टेक
टाकाचोर 'को कि ला को कि ला ' टेरता है

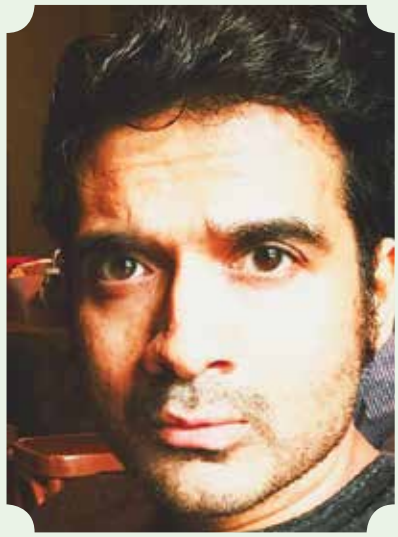

अज्ञानी जन हतप्रभ, कागला नहीं है
कोकिला है'
नीड़ नहीं किया पताकाओं के संग निकल गया
श्यामाओं की फि राक में.

ऋचा पाठक

रोज के सफर में एक जगह पड़ती है
वीरान-सुनसान
कारखानों की बची राख वहाँ डाल दी जाती है
उड़ने के लिये।

'राख उड़े' मुहावरा अच्छे अर्थ में नहीं आता
मैं रोज ही दुपट्टे से मुँह ढक के
या शीशे चढ़ा के जल्दी से उस जगह के
गुजरने का इंतजाऱ करती।

एक दिन उसी जगह
मोबाइल पर एक संदेश आया
मैं दुपट्टे से मुँह ढकना
या शीशे चढाना भूल गयी।

तभी देखा - बादल छा गये
हल्की- हल्की बूँदें बरसने लगीं राख पर
वो सौंधी-सौंधी खुश्बू मैं भरने लगी
तेज-तेज साँसों में, शीशे पूरे खोल के,

अब जब भी गुजरती हूँ वहाँ से
बादल छा जाते हैं
रिमझिम वर्षा की बूँदों से उठी खुश्बू
हवा में फैल जाती है ।

उस दिन मुझे वहाँ एक नदी भी दिखायी दी
जो सावन के बिना सूखी रहती थी शायद,
अब रोज ही मुस्कुरा देती हूँ
जब भी गुजरती हूँ वहाँ से..!

(संपर्क-8923800507)

अश्वनी राघव 'रामेन्दु'

आज फिर मौन हूँ मैं
चला जा रहा हूँ
शून्य में ताकते
सड़क के उस पार
हृदय में समेटे
निराशा, क्रोध और
ढेर सारा अपराधबोध।

छला है फिर मैंने
अपनों को
खेला है फिर मैंने
उनकी भावनाओं से
असफल होकर
कितना निष्ठुर हूँ मैं,
अचानक
बेमायने हो गए हैं
फेसबुक, व्हाट्सऐप
लाइक्स और कमेंट्स
बस चले जा रहा हूँ
सड़क के उस पार
क्योंकि यही मेरी नियति है।

(संपर्क-9871054552)

केशव शरण

एक

समाज को देते हैं
समझ, संवेदना, शब्दार्थ
और समाज से
अपनी न्यूनतम जरूरत-भर लेते हैं
पदार्थ

और सुन,
वे न डेरे के, न मठ के
अभिलाषी होते हैं
ऐसे बाबा भी होते हैं
दुनिया में
जैसे बाबा नागार्जुन!

दो

मैं चाहता न चाहता
लेकिन अगर मैं सरकार में
किसी बड़े पद पर होता
या समाज में प्रभावशाली
कभी न कभी
या प्रायः
ईमान खोता

मुझे खरीदा जाता
कभी न कभी
या प्रायः

अच्छा है मेरा कोई मोल नहीं है।

(संपर्क-9415295137)

डॉ. मोहसिन खान

नदी कभी मरा नहीं करती है,
रीत जाता है जब सारा निर्मल जल
तब भी बहा करती है,
कहीं न कहीं।
भीतर बहुत भीतर उसका प्रवाह
निरंतर वेगवान रहता है,
दरारों से रिसकर
उतर आता है जल
पाताल की शुष्कता को भिगोने को।

नदी कभी मरती नहीं,
कहीं किसी पोखर में रहती है जिन्दा,
कहीं ठहर जाती है खामोश तनहा,
कहीं मुड़कर हो जाती है अदृश्य,
कहीं बदल लेती है अपना रूप,
सिमट जाती है अपने आँचल में,
छुपा लेती है तपन को भीतर,
सोख लेती है सारी कड़ी धूप
और बहा देती है अपना रूप।
नदी कभी मरती नहीं है!

रहती है जिन्दा बादलों में,
चलती है नींदों में, खयालों में,
कभी घर के बर्तन में,
तो कभी कपड़ों की खुशबुओं में,
कभी लोगों की पहचान बनकर।
कभी घाटों की पंक्तियों में,
कभी पक्षियों को आँखों में,

कभी मछलियों की साँसों में,
तो कभी दरख़्तों के सीनों में,
कभी सावन के महीनों में,
कभी कश्ती की तलहटी में,
कभी रेत के बंजरपन में,
जाने कहाँ-कहाँ,
कैसे-कैसे,
रखती है खुदको बचाकर क्योंकि
नदी कभी मरा नहीं करती।

(संपर्क-9860657970)

गिरीश कुमार

वह बैंक में
झाड़ू लगाने का काम करती थी
उसका असली नाम तो मैं नहीं जानता
मगर औरों की तरह
मैं भी उसे सुनिलवा की माई ही कहा करता।
वह आती
सबसे पहले बीड़ी जलाती
फिर अपनी और शहर की खबरें सुनाती
कि आम इतना महँगा हो गया
कि खाने को मन तरस गया
अब तो सिर्फ बड़े लोग ही इसे खाते होंगे
कभी कहती
कि एक बार सिर्फ एक बार
गाड़ी के एसी डब्बे में बैठ जाती तो - 'तर' जाती।

और अंत में
एक लम्बी साँस लेकर
कुछ उदास होकर कहती
कि बस एक बार सुनिलवा बाहर जाकर
किसी काम धंधे से लग जाता
तो मैं चैन से मर जाती।
और
एक दिन वह मर भी गई
चैन से मरी की नहीं - मैं नहीं जानता
सुनिलवा बाहर जाकर
काम धंधे से लगा की नही
मैं नहीं जानता।

(मोबाइल-9934827523)

नीलकंठ

दाग है पर दगा की हमने कि
उसका मुहँ कुपुट डाला...
फिर बैठ उस पर घाघरा-सा मुबाहसा में हेंकड़ी भी झाड़ते हैं,
बला का हासिल गला भी फाड़ते हैं।
रंग पट पर मोर जैसा मत्त जब हम नाचते हैं,
घाघरा-पट से उठा सिर दाग कहता हैः
'पात्रता के पात्र का मैं मूल नट हूं
कुपात्र कर डाला तुम्हीं ने है मुझे।'
वह जानकारों को समझता है!
सतर्क तब हम इस अभी के - उस तभी के
लगे दामी दाग को
जिस पर हैसियत तामीर है,
हैसियत की उसी बाँकी किसी खिड़की से
दर्शकों से नहीं अपने गुट - घरानों से, जो सब आत्मा हैं,
कहकहा कर कहे देते हैं
कि देखो एक नट पुरमसखरा यह बहुत जोकर है!!
छिपकर खुले जनप्रिय घन जमावट-दाग से निर्मित
सभा के आदमी हम
दाग का आभार कहने सुबह उसका रोज पूजा-पाठ करते हैं।
गुट-घराना-आत्मा के सामने हम खरा-निर्गुण, दाग को,
जो हरा काफी है,
दागते हैं दम लगाकर और दिनभर लाल रहते हैं।
जन सभाओं-गोष्ठियों में इस तरह ऊंचे हमारे
भाल रहते हैं।
वक्तव्य-लेखों में हमीं से निकल चाईं-गोइयाँ जन
सूइयों से कोंच थन में दूध भरते हैं,
इस तरह हम पशु दुधारू वर्ग-संघर्षों-जुझारू
मूल्य रचते हैं।
हम वामन नहीं लेकिन हैं, फिर अपने सुभीते-सौख्य
सारा विश्व जीते हैं
आदमी हैं सौ छिद्रों स्खलित हैं तो क्या साथी,
पतित हैं तो क्या --
अपने चरित-पावक-पक्व हम तो क्रातिकारी हैं,
पनहीं नहीं सीते हैं!
दाग, पैरों तले पावन पुरूष, को, जो निजी जीवन-घरू मसला,
पूजते हैं हम।
वस्तु-मत है वस्तु बाजारू उसको लोकहित में फायदा यदि
प्रचुर-गहरा दे तो हम कायदे से कीनने न दें,
छुट्टा हो पड़ा तो बीनने न दें
भाई बूर्जआ! लंगोट-यार !
पूछते हैं हम।

सारिका आशुतोष मूंदड़ा

वही घर, वही समाज
मगर बहुत पुराने बहुत अलग दो सांचे,
धरातल अलग
परवरिश के हमारे आसमान अलग
सोच के हमारे ये जड़ें बहुत गहरी रहीं
मेरे अहम की, तुम्हारे त्याग की
मेरी बेरोकटोक आजादी की
तुम पर नाहक पाबंदियों की
मेरे शासक भाव की
तुम्हे शासित बनाने की
हाँ, ये नींवे बहुत गहरी रही
खुशी है
तुम जूझ रही हो
कभी कभी मैंने भी थामा है हाथ
चाहा है बदलाव
मगर कमजोर कर दिया है
मेरे सांचे ने मुझे
चाहिए तुमसे ही ताकत
अहम्को अपने,
मिला सकूँ मिट्टी में
बरसो गहरी नींव में,
ला सकूँ परिवर्तन
जब ढहने लगे
अहम की नींव मेरी,
साथ तुम्हारे मैं भी
फिर नयी जड़े तलाश सकूँ।

(संपर्क-9414416252)

सीमा अग्रवाल

ओ यायावर!
कभी कहीं तो लो विश्राम
ओ विदेह बिन पाँखे बिन पग
नाप चुके हो सारा ही जग
भटकन ही भटकन कि स्मत में
इस मग उस मग उस मग इस मग
सूनी डयौढ़ी
राह तक रही
यार बिताओ
अपने घर भी कोई शाम

इस तट से क्षण में हो उस तट
झट से धरती बादल पर झट
ऊर्ध्वलोक में चट से पट से
अधोलोक में, ज्यों कोई नट

जरा समय दो
और समेटो
तितर-बितर सा
पड़ा तुम्हारा कब से धाम

जहाँ रहे बस वहाँ नहीं हो
नहीं जहाँ बस वहीं कहीं हो
प्रतिबंधों के नगर जिस तरफ
हाँ अक्सर तुम मिले वहीं हो

लाख मनाओ
रोको लेकिन
तुम निबंधी
चले हमेशा रस्ता वाम।

नीलांशु रंजन

लम्हा-लम्हा हो तुम मेरे ख़्यालों में
लम्हा-लम्हा हो तुम मेरी सांसों में
तुम्हें पाने की जुस्तजू में छूट गईं
सारी हसरतें पीछे
दरक गए सारे रिश्ते-नाते
कोई हमदम न रहा
कोई दोस्त न रहा
मेरा वजूद भी
मेरा वजूद कहां रहा?

तुम्हें पाने की चाहत में
छूट गईं सारी चाहतें पीछे
मेरी धड़कनों में
धड़कती रही तुम
सिर्फ़ तुम
मेरी जिन्दगी को आदाब करती
मेरे रोम-रोम में
बस गई तुम
सिर्फ़ तुम।

आदिनाथ की कविताएं

मुझे लिखो मत

मुझे लिखो मत मुझे गाओ,
मुझे बाँधो मत मुझे बहाओ

पृथ्वी भी तो हवा को गाती है,
समुद्र भी तो जल को गाता है

आकाश भी तो बादल को गाता हैं,
अन्न भी तो भूख को गाता है

अक्षर भी तो शब्द को गाता है,
रात भी तो अंधकार को गाती है

फिर तुम मुझे क्यों लिखना चाहती हो,
मुझे लिखो मत तुम मुझे गाओ।

हवा पेड़ों को बाँध के कहाँ रखती हैं,
पहाड़ भी हवा को बाँध के कहाँ रखते हैं

चूल्हे की आग भी धुएँ को कहाँ बाँध कर रखती है,
पत्ती को पेड़ बाँध कर कहाँ रखते हैं

दीए की लौ प्रकाश को कहाँ बाँध के रखती है,
फिर तुम मुझे बाँधना क्यों चाहती हो

मुझे बाँधो मत तुम मुझे बहा दो।

बनना न बनना

मैं रेशमी किमखाब नहीं बन पाया
बना तो जूट और टाट बना
तना तो किसी याचक के माथे पर तना गया
सड़क पर बिछाया।

छप्पन पकवान बन सज नहीं पाया राजभोग की थाली में
बना माड़-भात परोसा गया पत्तल पर
पका मिट्टी की हांड़ी में
गिना गया भात-माड़ी में।

नहीं बन पाया कितना कुछ उत्तम और महान
लेकिन कुछ तो बनता रहा श्रीमान

छप्पन तोले की करधन मैं नहीं बना किसी महारानी का
न नौ लखा हार हुआ किसी सेठानी का

मैं तो सड़क पर भटकती एक भिखारन के गले में
पड़ा काला तार हुआ
ऐसा कहाँ-कहाँ और कितनी-कितनी बार हुआ।

भगवान स्वरूप सरस के कठिनतर जीवन और सृजन का पुनर्पाठ

साँप-सा हर आदमी को सूँघता है आदमी

पूरा सफर, जैसे किसी यातना-शिविर में बीता हो, जीवन और सृजन, दोनो के ऐसे कठिनतर अनुभवों से गुजरते हुए संघर्ष के कवि भगवान स्वरूप सरस अपने वक्त के उन गिने-चुने कवियों में रहे हैं, जिनका 'एक चेहरा आग' का न जाने क्यों किसी-किसी को ही ठीक से सुहाया, अथवा गाहे-ब-गाहे नजर आया। जाते-जाते वह समकालीन कविता के लिए कई ऐसे सवाल छोड़ गए, जो आज भी कौंध में हैं। वह अपने दौर के उन प्रतिभाशाली कवियों में से एक थे, जिन्होंने नवगीतकार के रूप में हिन्दी काव्य जगत में बड़ी सादगी और शालीनता से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। गुमनाम-सा वक्त काट गए शीर्ष कवियों के 'शब्द-शिखर' में इस बार नवगीतकार भगवान स्वरूप सरस, जाने-माने कवि राम सेंगर के शब्दों में।

कविता पर बड़ी-बड़ी बातें तो बहुत होती रही हैं मगर 'एक चेहरा आग' का न जाने क्यों किसी-किसी को ही ठीक से सुहाया, नजर आया। अपने वक्त के सशक्त प्रयोगधर्मी कवि भगवान स्वरूप सरस उन दंभी और चालाक लोगों की जवाबदेही को लेकर बहुत सारे सवाल छोड़ गए हैं, जो आज भी कौंध में हैं। सवाल, उन कवि नुमा लोगों के लिए, जो बड़े ही गैरजिम्मेदाराना ढंग से गीत के कहन में आए परिवर्तनों को देख-देख कर जले-भुने जा रहे थे और उसकी नवता और आधुनिकता बोध को कठघरे में खड़ा करके बड़े ही असभ्य तरीके से नवगीत के अस्तित्व, उसकी अस्मिता पर भन्नाते रहे हैं। और, वे लोग भी, जो छंद और लय के अपने ज्ञान पर इतराते हुए कोरे गद्य को कविता के नाम पर ढेर लगाते गए, और अर्थ की लय की दुहाई दे-देकर गीत-नवगीत पर मुंह बिचकाते रहे हैं। होती भी क्या है अर्थ की लय, गीत न लिख पाने या उसके व्यापक और जीवंत कथ्यरूप और शब्द के स्वर-संधान को न पकड़ पाने के व्यामोह में जकड़े असहाय बौद्धिकों के चामत्कारिक शब्दजाल या कोरे दिमागी फितूर के सिवाय!

यह तो गीत का विरोध करने वालों के लिए महज एक फतवा था, जिसके सत्य को उनसे अधिक भला कौन जानता होगा, जिन्होंने इस फतवे के ढोंग को भुनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भगवान स्वरूप ने लयात्मक संवेदना के साथ किए गए इस भोंडे मजाक को समझते हुए पूरी तरह लयात्मक बने रहकर इस कथित अर्थ की लय को प्रयोग के बतौर गीतात्मक रूप में साधा और इस साधना की तकनीक भी अपनी कथ्य-भंगिमाओं और शब्द विन्यास के जरिए विकसित की, जिसे उनके गीतों में सहज ही निरूपित होते देखा जा सकता है।

सरस ने पुरानी भावस्थितियों पर वृहत्तर मानवीय-सन्दर्भों से कटे निरे आत्मरोदन से भरे गीत के उबाऊ स्वरुप और स्वभाव को बदली हुई परिस्थितियों में अपर्याप्त मानते हुए उसके रुढ़ साँचों-ढाँचों को तोड़ कर अपना एक अभिनव कथ्यपूर्ण शिल्प विकसित किया। यह जोखिम उन्हें इसलिए भी उठाना पड़ा क्योंकि कथ्य की चुनौतियाँ मुँह-बाए खड़ी थीं। नवता और आधुनिकताबोध के तकाजों पर पुराना गीत निपट गूँगा बना हुआ था। जीवन स्थितियों की भयावहता और यथार्थ के थपेड़ों के बीच अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे आदमी से उसकी संवेदना के तार कभी ठीक से जुड़ नहीं पाये। बदले हुए परिदृश्य को न उसने उसके साथ अन्तरंग होकर कभी समझने की कोशिश की और न उसे कथ्य भंगिमा के साथ भाषा-शिल्प के नये संस्कार ही दे पाया।

नवगीत ने पुराने और रुढ़ गीत के इस व्यामोह को समझा और उसे तोड़ कर कहन के नये और जीवन्त मुहावरे का विकास किया। नयी परिस्थितियों और आत्मस्थिति के द्वन्द्व के बीच वह चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने उपादानों की जाँच की प्रक्रिया तेज करते हुए अपने आपको तैयार कर रहा था। इस संकल्पशीलता ने नवगीतकार को पुराने कल्पना विलासी गीतकारों से अलग कर दिया। यह गीत-नवगीत की निजी स्तर की लड़ाई उतनी नहीं थी, वरन, गीत की दाँव पर लगी अस्मिता की रक्षा करने के लिए परिदृश्य पर उभरी खिल्ली भरी चुनौतियों से रु-ब-रु होने की ज्यादा थी। भगवान स्वरुप इस सोच और संवेदना को लेकर उभर रहे प्रारंभिक दौर के उन प्रतिभाशाली कवियों में से एक थे जिन्होंने नवगीतकार के रुप में हिन्दी काव्य जगत में बड़ी सादगी और शालीनता से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उनके हर गीत में मानवीय संवेदना और युग चेतना के बड़े गहरे आशय और उससे भी कहीं गहरे ऐसे अर्थ छिपे हैं कि जब वे खुलते हैं तो एक विद्युत्मयी उजास के साथ उनकी कविता निखरती चली जाती है। वह फिर गँवई, शहरी या महानगरीय संवेदना की वाहकमात्र न होकर समूची मानवीयता, प्रेम और करुणा की संवाहक बनकर स्फुरित हो उठती है।

भगवान स्वरूप सरस आरंभ से ही प्रयोगधर्मी कवि रहे हैं और नवगीत तथा नई कविता दोनों विधाओं के सफल रचनकार के रूप में उनकी परिगणना होती है। उनकी कविता में प्रेम, सामाजिक दुख-दर्द, मानवीय पीड़ा और मध्यवर्गीय व्यक्ति की विवशता, छटपटाहट और विक्षोभ की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति हुई है। वे मुख्यतः संघर्ष, युयुत्सा और जिजीविषा के कवि हैं। उनके नवगीतों का अपना रंग है। इन रंगों का प्रभाव तथा उनकी कविता का महत्व तब और ज्यादा अच्छी तरह समझ में आता है, जब हम उनकी सौंदयार्नुभूतियों, जीवनबोध और अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य के साथ-साथ घर परिवार और समाज में व्यक्ति रूपी उनकी हैसियत, कवि व्यक्तित्व, मनोविश्लेषण, उनके आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक परिवेशों तथा उनकी प्राथमिकताओं और प्रतिबद्धताओं पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करते चलें। यह तभी संभव है जब हम नवगीत के प्रति अपने सारे दुराग्रहों को त्याग कर एक सच्चे-सहृदय पाठक की तरह इस कवि की रचनाशीलता पर नजर रखते हुए उसे आत्मसात करें। उनकी संवेदना जितनी तरल और सहज है, उतनी ही रागमयी विकलता और विक्षोभ लिए एक बेचैन कर देने वाली आग का अहसास भी है उसमें।

समूचे अस्तित्व को ही हिला देने वाले गहरे जानलेवा स्थितियों के संघर्ष से गुजरते हुए रचनाकर्मरत भगवान स्वरुप सरस को जिसने देखा है, उसे यह समझते देर नहीं लगेगी कि किस तरह से यह कवि अपनी रचनाशीलता की शर्तों पर जिंदगी से जूझता रहा, कविता में हमेशा ऊजार्वान और जीवन्त बना रहा और किस तरह उसने परम्परा से छन कर आये गीत के स्वरूप-विकास में अपनी भूमिका सुनिश्चित की। यथार्थदृष्टि के बोध को अपनी तरह से विश्लेषित करने और एक सार्थक द्वन्द्व में उसे संघटित करने वाली धारावाहिक चेतना उनके गीतों में कितनी पूर्णता पा सकी है, यह भले ही एक विचारणीय प्रश्न बना रहे, लेकिन, हिन्दी नवगीत के उद्भव और विकास के इतिहास में इन गीतों के महत्व को पूरी स्पष्टता से रेखांकित किया जाता रहेगा।

काव्य रचनाकर्म से जुड़े लोगों को ध्यान में रखते हुए यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि जनमानस और अपने-कविमानस की संवेदनात्मक हलचलों को यदि हम नहीं सुन पाते तो हमारे लिए इन सारी बातों या सरस जैसे कवि की कविता की मूलभावना और उसकी अर्थव्याप्ति का कोई मूल्य नहीं है। भगवान स्वरुप अब इस दुनिया में नहीं हैं और विडम्बना भी कैसी कि वे अपनी एक पुस्तक को प्रकाशित रूप में भी नहीं देख पाये। इन पंक्तियों के लेखक ने उनकी डायरियों से चुन-चुनकर बड़े जतन से उनकी पुस्तक 'एक चेहरा आग' की पाण्डुलिपि तैयार की। पुस्तक को यह नाम दिया। इस सबका भी क्या मूल्य रहता, यदि स्व. मायाराम सुरजन के विशेष प्रयास न होते तो। यह आज हिन्दी नवगीत की धरोहर है।

अपने नवगीतों में भगवान स्वरुप सरस ने मनुष्य के दुख-सुख, जीत-हार, विक्षोभ और बेचैनी की कथाओं को एक सधी और मंजी हुई काव्य भाषा के नये और जीवन्त मुहावरे में अपनी अनुभूतियों के रंगों के साथ, ऐसे बुना है मानो भाषा और अनुभूति उनके कथ्य-शिल्प के साथ अन्तर्गुम्फित हों। स्त्री-पुरुष का प्रेम एक सर्वकालिक शाश्वत विषय है। जब तक मनुष्य है, तब तक अपने उत्ताप के बहुरंगी संघटक-विघटक उपादानों के साथ मानवीय संवेदना के रुप में स्त्री-पुरुष के बीच अपने रंगमय स्वरुपों की विविधता लिए प्रेम जीवित रहेगा। प्रेमगीत हिन्दी में खूब लिखे गये हैं, इतने, कि इन्हीं भावविलासी प्रेमगीतों ने गीत विधा को चौपट भी किया। नवगीत में व्यापक जीवन संदर्भों को अहमियत देने के कारण मानव अस्तित्व से जुड़े इस विषय को हाशिये पर डाल दिया गया। यांत्रिक ढंग से लिखने वालों से भिन्न कुछ ऐसे भी कवि थे जिन्होंने प्रेमगीतों को ऐच्छिक विषय की कोटि में डाल कर बाद के लिए नहीं छोड़ा। प्रक्रिया में आये हर भाव और विचार को समाज सापेक्ष रुप में उन्होंने गीत में बांधा, इसीलिए, नवगीत में प्रेमसंबंधों की इतनी सुंदर और अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति हो पायी है, जिसे यदि कोरे रुमान से जोड़कर सतही नारिये से न देखा जाये तो इस अभिव्यक्ति का रंग बेहद संवेद्य और मार्मिक है। क्योंकि हम भगवान स्वरुप के नवगीतों पर चर्चा कर रहे हैं, इसलिए, इन गीतों की संवेदी मार्मिकता और बढ़ जाती है-

'अभी-अभी देहरी पर छोड़ गया
एक और आश्वासन डाकिया,
एक शब्द प्यार और हस्ताक्षर
शेष पृष्ठ हाशिया।'

कहीं-कहीं उनके गीतों में लय की जो तारतम्यहीनता-सी जान पड़ती है, वह दरअसल तारतम्यहीनता न होकर शब्द विव्यास और लयात्मकता की कथ्यपूर्ण भावान्विति के नए प्रयोगधर्मी छांदसिक संतुलन हैं, जिन्हें उन्होंने

अपनी आंतरिकता के साथ बड़े ही कौशल से साधा है। सच कहें तो यह उनका कोमल कांत पदावली, सधे-बंधे छोटे फामूर्लाबद्ध गीत लेखन के विरुद्ध अपनी तरह का सार्थक हस्तक्षेप है, जिसमें युग सत्य के अधिकाधिक करीब पहुंचने के तथा गीत सृजन के लिए भाषा-शिल्प के नए वातायन खुलने के स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। उनकी कविता का एक-एक शब्द अपने व्यापक अर्थ में भावों को समेटे हुए चलता है। वे शब्दों का इस रूप में प्रयोग करते हैं, मानो पाठक के समक्ष अपना दिल खोलकर रख रहे हों।

उन्होंने रूढ़ सांचों, ढांचों को तोड़कर अपना एक अभिनव कथ्यपूर्ण शिल्प विकसित किया। यह जोखिम उन्हें इसलिए भी उठाना पड़ा, क्योंकि कथ्य की चुनौतियां मुंह बाए खड़ी थीं। नवता और आधुनिकताबोध के तकाजों पर पुराना गीत निपट गूंगा बना हुआ था।

उनके शब्द-संघर्ष में 'एक चेहरा आग का'

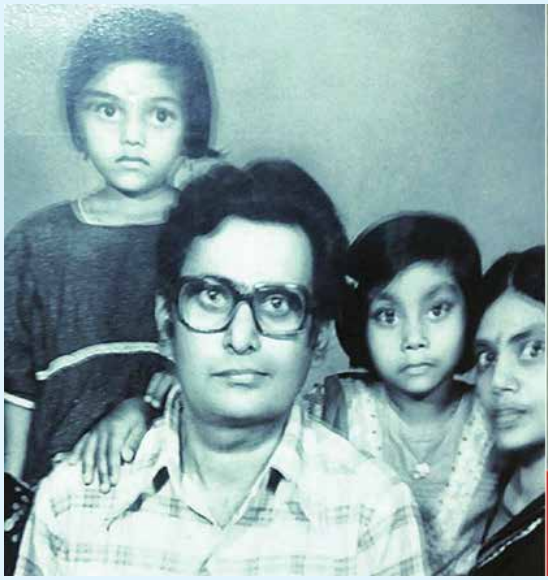

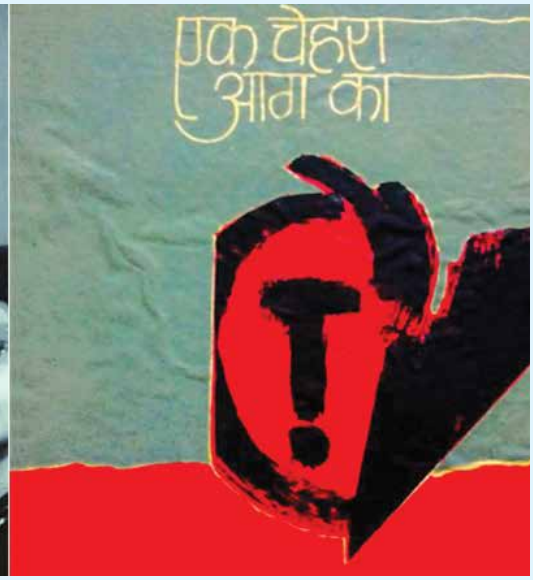

'नवगीत दशक' के प्रमुख कवि भगवान स्वरूप सरस जिस तरह रचनाकर्म में संघर्षरत रहे, उनका जीवन भी उतना ही उथल-पुथल भरा रहा। मूलतः वह मैनपुरी (उ.प्र.) के ग्राम लाखनमऊ के रहने वाले थे। आगरा (उ.प्र.) से स्नातक शिक्षा लेने के बाद कुछ वर्षों तक उन्होंने अध्यापन किया, कई नौकरियां बदलीं, बाद में मध्य प्रदेश में ग्रामीण विकास अभिकरण विभाग में अकाउंटेंट हो गए और वहीं से सेवा निवृत्त हुए। वह कवि सम्मेलनों में भी जाते थे, लेकिन बहुत कम। शलभ श्रीराम सिंह, डॉ. शंभुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, शांति सुमन, माहेश्वर तिवारी, राम सेंगर, नचिकेता, नारायणलाल परमार आदि से उनकी साहित्यिक निकटता रही। उनकी जिंदगी की उठा-पटक के पीछे एक कारण उनका स्वास्थ्य भी रहा। उनका घरेलू जीवन काफी कष्टकर रहा। अपने खाटी प्रगतिशील व्यक्तित्व के नाते वह सरकारी साहित्यिक संस्थाओं से भी काफी उपेक्षित रहे।

आलोचक मोहन श्रीवास्तव ने शहडोल (म.प्र.) में विभागीय सहकर्मी क्रांति श्रीवास्तव से उनकी दूसरी शादी रचाई थी। बताते हैं कि उन्हीं दिनो उनकी पहली पत्नी काफी रचनाओं की पांडुलिपियां अपने साथ लेकर भाई के पास लौट गईं। क्रांति श्रीवास्तव से उनकी दो पुत्रियां प्रतीक्षा और पूर्वा हुईं। सरसजी का हृदयाघात से निधन हो गया। उनकी दोनो बेटियों की शादियां उनके निधन के बाद हुईं। बाद में प्रतीक्षा की भी एक हादसे में मृत्यु हो गई। इस समय दिल्ली में रह रही पूर्वा श्रीवास्तव अच्छी आर्टिस्ट हैं। क्रांति श्रीवास्तव अकेले रायपुर (छत्तीसगढ़) के पलारी क्षेत्र में रहती हैं। सरस जी कवि नचिकेता द्वारा संपादित 'अंतराल' में खूब छपे। वस्तुतः वह अपने समकालीनों में सबसे ज्यादा उपेक्षित रहे। शलभ श्रीराम सिंह से उन्हें काफी प्रोत्साहन मिलता रहा। रायपुर के पास धमतरी के रहने वाले शीर्ष कवि नारायणलाल परमार से उनकी अंतिम समय तक खूब बनी।

अपनी रचनाओं के प्रकाशन के प्रति वह कितने उदासीन रहे, इसका पता इस बात से चलता है कि तमाम कविताएं संग्रहित कर लेने के बावजूद किताब के लिए उन्होंने कोई पांडुलिपि तक नहीं बनाई। किसी तरह कवि राम सेंगर ने उनकी रचनाओं की पांडुलिपि तैयार की। 'नवगीत दशक-दो' का जब 83 में विमोचन हुआ, उस समय पहली पांडुलिपि देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। दैनिक 'देशबंधु' के संपादक ललित सुरजन के प्रयासों से यह पांडुलिपि 'एक चेहरा आग का' नाम से हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित हुई। उन्हीं के प्रयासों से सरस जी को हिंदी साहित्य सम्मेलन, भोपाल की ओर से पांच हजार रुपए का पुरस्कार भी मिला। इससे पूर्व उनका गीत संग्रह माटी की परतें प्रकाशित हो चुका था। छंदमुक्त रचनाओं के एक साझा संग्रह 'डैनों से झाँकता सूरज' में भी उनकी कविताएं संकलित हैं।

भगवान स्वरूप सरस के पाँच नवगीत

एक

जब-जब भी भीतर होता हूँ
आँखें बन्द किए
लगता, जैसे,
जलते हुए सवालों पर
लेटा हूँ जहर पिये ।

दबे हुए अहसास
सुलग उठते हैं सिरहाने,
प्रतिबन्धों के फन्दे
कसते जाते पैंताने,

लगता, जैसे,
कुचली हुई देह पर कोई
चला गया हो लोहे के पहिए।

दो

खींच कर परछाइयों के दायरे
आईनों पर घूमता है आदमी ।

अथ -
फफूँदी पावरोटी केतली-भर चाय,
इति -
घुने रिश्ते उदासी भीड़ में असहाय,
साँप-सा हर आदमी को
सूँघता है आदमी।

उगा आधा सूर्य, आधा चाँद
हिस्सों में बँटा आकाश,
एक चेहरा आग का है
दूसरे से झर रहा है
राख का इतिहास,
आँधियों में मोमबत्ती की तरह
खुद को जलाता-फूँकता है आदमी।

तीन

क्या किया आकर
तुम्हारे इस नगर में।

हादसे-सा उगा दिन
काँपे इमारत-दर-इमारत
हाशियों-से खिंचे जीने,
चीखते सैलाब में धँस कर अकेली
थाहती है जिन्दगी,
पल-क्षण-महीने,
बाँह से जुड़ती न कोई बाँह
जैसे, आ गये हों हम
किसी बंदी शिविर में,
क्या किया आकर
तुम्हारे इस नगर में ।

रोशनी के इंद्रधनुषों पर लटकते
प्लास्टिक के फ्यूज चेहरे,
धुंधलकों में चरमराती गंध के आखेट
हिचकियों पर हाँफते संगीत ठहरे,
सभ्यता रंगीन दस्ताने पहन
धकिया गयी
मासूमियत को चीरघर में।

चार

और ऊँचे
और ऊँचे हो गये हैं
घर दलालों के।
कौन उत्तर दे सवालों के।

कौन बोले
हमीं केवल हमीं थे
उस सड़क पर
संग्राम के पहले सिपाही,
वक़्त पर
बेवक़्त पर
हमको बिछाती-ओढ़ती थी बादशाही,
अब हमीं
नेपथ्य से भी दूर धकियाये गये हैं
बज रहे हैं मंच पर
घुँघरू छिनालों के।

खौलते जलकुण्ड में डूबीं
किसी की श्लोक-सी सुबहें
किसी की ग़ज़ल-सी शामें,
जन्म से अंधी मकड़ियाँ
इंद्रधनुषी जाल बुनती हैं
समय की उँगलियाँ थामे,
हाथ बदले हैं
नकाबों में ढँके चेहरे वही हैं
बंध ढीले पड़ गये
ठंडी मशालों के।

पाँच

आग से मत खेल बेटे
आग से।

हिल रही पूरी इमारत
सीढ़ियाँ टूटी हुई
मत चढ़,
खोल बस्ता खोल
गिनती रट
पहाड़े पढ़,
मत दिखा उभरी पसलियां
बैठ झुक कर, बैठ
दर्द भी गा राग से।

मत अलग कर दूध -पानी
भेद मत कर
गीत हो या मर्सिया,
पृष्ठ पूरे उन्हें दे
जिनके लिए हैं
पकड़ अपना हाशिया,

नहींऽऽऽ रोटीऽऽऽ नहींऽऽऽ
चाँद तारे और सूरज माँग
काठ के ये खिलौने भी
मिल गये हैं भाग से।

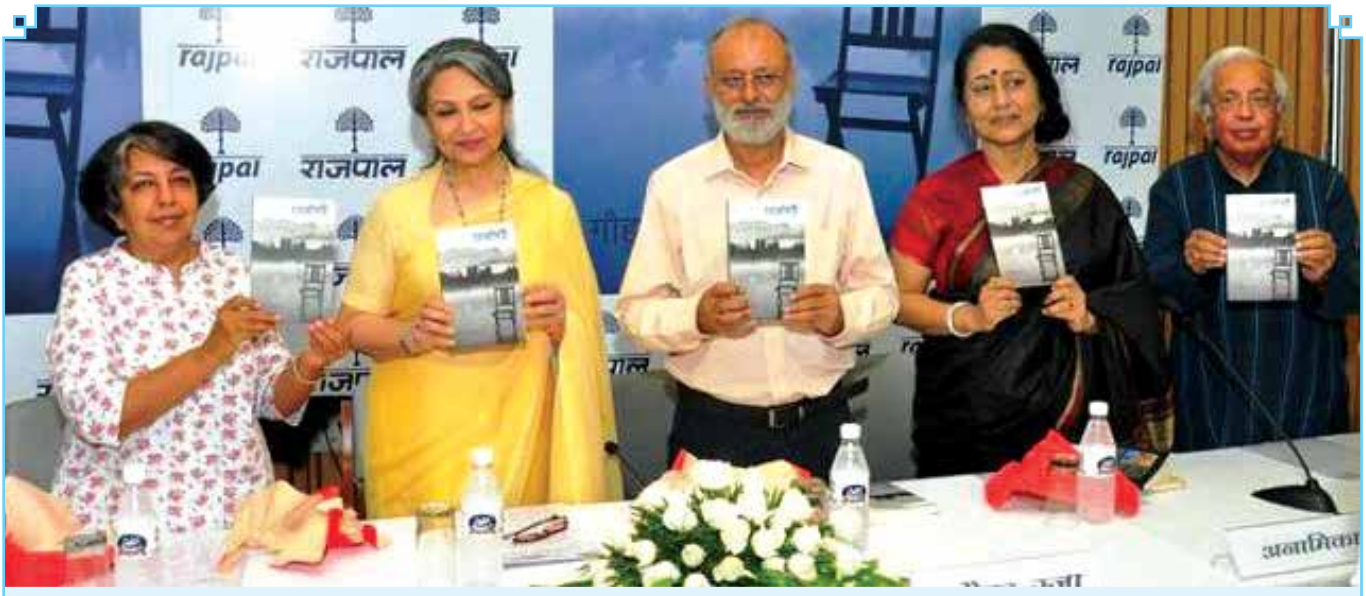

सुपरिचित कवि एवं फिल्मकार गौहर रजा के नजम संग्रह 'खामोशी' का अभिनेत्री शर्मिला टैगोर ने पिछले दिनो दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में लोकार्पण किया। इस मौके पर कवि अशोक वाजपेयी, कवयित्री अनामिका आदि ने पुस्तक पर अपने विचार प्रकट किए। कार्यक्रम में राजपाल एंड संस की मीरा जौहरी, आलोचक अपूर्वानंद, कथाकार प्रियदर्शन, पत्रकार कुलदीप कुमार, प्रेमपाल शर्मा, कव्वाल ध्रुव संगारी, शबनम हाशमी, डॉ. रचना सिंह सहित बड़ी संख्या में साहित्य प्रेमी, अध्यापक और लेखक उपस्थित रहे।

नई दिल्ली के मंडी हाउस स्थित साहित्य अकादमी सभागार में पिछले दिनो युवा कथाकार प्रवीण कुमार के कहानी संग्रह 'छबीला रंगबाज का शहर' का विमोचन स्वयं प्रकाश, सुधीश पचौरी, संजीव कुमार, ओम थानवी ने किया। प्रकाशनोत्सव की एक झलक।

पटना (बिहार) में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दो दिवसीय 38वें महाधिवेशन में पिछले दिनो कवि वाहिद अली वाहिद, वेदव्रत वाजपेयी, गोविंद झा, डॉ. रवींद्र राजहंस, डॉ. शिवदास पाण्डेय, बाबूलाल मधुकर, डॉ. ममता मेहरोत्रा, डॉ. रेवती रमण, डॉ. तारा सिन्हा, डॉ.साधु शरण सिंह सुमन, डॉ. मुचकुन्द शर्मा, डॉ.शहनाज फातमी बलराम सिंह, डॉ. शारदा चरण झा, डॉ. भूपेन्द्र कलसी, रवि भूषण राय, प्रो इन्दु सिन्हा, अवधेश प्रीत, डॉ. कलानाथ मिश्र, देवेंद्र देव, राजमणि राय मणि, गिरिजा वरणवाल, अमरेन्द्र कुमार, हरि विलास राय, विश्वनाथ वर्मा, इंद्र मोहन मिश्र, चंद्रेश्वर प्रसाद सिंह, उमा शंकर सुमन, ओम प्रकाश जमुआर, डा. मीनाक्षी प्रसाद, डा. खुर्शीद अकबर, ओम प्रकाश पाण्डेय प्रकाश, आराधना प्रसाद चतुवेर्दी, डॉ. मुमताज राणा, हृषिकेश पाठक, मो. सुलेमान, कृष्ण चंद्र बाजपेयी, बाँके बिहारी साव, मासूमा खातून, सिद्धेश्वर, बिंदेश्वर प्रसाद गुप्ता, मुकुंद प्रकाश मिश्र, मुस्सर्रत जहां, श्याम बिहारी प्रभाकर, प्रभात कुमार धवन, डॉ. आलोक कुमार, डॉ. बैद्यनाथ ठाकुर, शैलेंद्र कुमार एवं राजेंद्र प्रसाद सिंह को सम्मानित किया गया। चित्र में समारोह की एक झलक।

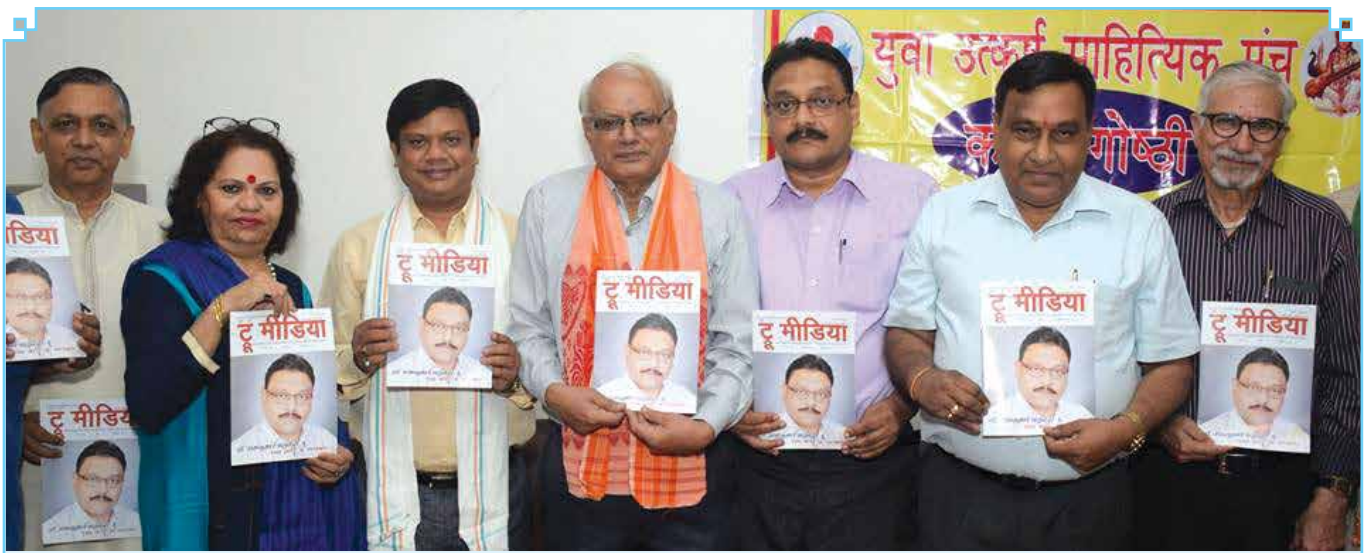

नई दिल्ली के रेलवे ऑफिसर्स क्लब में पिछले दिनो युवा उत्कर्ष साहित्य मंच के तत्वावधान में व्यंग्यकार डॉ. रामकुमार चतुवेर्दी पर केन्द्रित टू मीडिया विशेषांक का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम को मंच के संरक्षक प्रो विश्वम्भर शुक्ल, मंच के अध्यक्ष रामकिशोर उपाध्याय, टू मीडिया के संपादक ओम प्रकाश प्रजापति, सुरेश पाल वर्मा आदि ने सम्बोधित किया। कार्यक्रम में डॉ राम कुमार चतुवेर्दी, भोजपुरी कवयित्री डॉ सविता सौरभ, गीतकार गोप कुमार मिश्र को सम्मानित किया गया। कवि विनय शुक्ल विनम्र ने इस विशेष आयोजन का संचालन किया।

भोपाल (म.प्र.) के स्वराज भवन-सभागार में वन्दे मातरम् उत्सव समिति की ओर से ग़ज़लकार अनवारे इस्लाम की अध्यक्षता में हाल ही में कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि के नवीनतम काव्य-संकलन 'उजालों की तलाशी' का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम के अतिथि रहे जाने-माने ग़ज़लकार राम मेश्राम और कवि अशोक शाह। लोकार्पण के पश्चात पयोधि ने पुस्तक से चुनिंदा रचनाओं का पाठ किया। कार्यक्रम को कवि महेन्द्र गगन, कवयित्री डॉ. लता अग्रवाल, चर्चित कवि अशोक शाह, राम मेश्राम, अनवारे इस्लाम आदि ने सम्बोधित किया। संचालन हेमन्त कपूर ने किया।

कासगंज (उ.प्र.) में 'निर्झर' की ओर से जाने-माने कवि एवं त्रैमासिक 'अभिनव प्रयास' के संपादक अशोक अंजुम को 'अजेय स्मृति पुरस्कार-17' एवं 'साहित्य भास्कर' उपाधि से सम्मानित किया गया। 'निर्झर' के सचिव अखिलेश सक्सेना ने कवि अंजुम के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डाला। डॉ अखिलेश चंद्र गौड़ ने सम्मान पत्र का वाचन किया। इस अवसर पर कवि अंजुम ने अपनी रचनाओं का सरस काव्य-पाठ किया। डॉ रामबहादुर सिंह 'निदोषी', बलबीर सिंह 'पौरुष', बलराम सरस, अजय अटल, अखिलेश सक्सेना, अवशेष कुमार आदि ने भी कविताएं सुनाईं। संचालन डॉ रामप्रकाश 'पथिक' ने किया।

नई दिल्ली में पिछले दिनो अयन प्रकाशन के एक भव्य समारोह में ख्यात कवि विज्ञान व्रत को शाल, नारियल के साथ ग्यारह हजार रुपए की सम्मान राशि से समादृत किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि बालस्वरूप राही ने की। समारोह में पत्रकार बी एल गौड़, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, आशीष कांधवे, कवयित्री कल्पना मनोरमा, चन्द्रप्रभा आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

बीकानेर (राजस्थान) के साहित्य एवं कला संस्थान 'शब्दरंग' द्वारा शिव निवास में कवि कथाकार राजाराम स्वर्णकार का सम्मान किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रहे महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय के कुलसचिव मनोज कुमार शर्मा। कार्यक्रम को सीताराम मथुरिया, अशफाक कादरी, डॉ. मुरारी शर्मा, वरिष्ठ चित्रकार मुरली मनोहर के. माथुर, फिल्मकार मंजूर अली चंदवानी, डॉ. नीरज दैया, डॉ. अजय जोशी, चन्द्रशेखर जोशी, नागेश्वर जोशी, ब्रजगोपाल जोशी, कवि संजय आचार्य वरुण, मीनाक्षी स्वर्णकार, सौरभ स्वर्णकार आदि ने सम्बोधित किया। कवि कथाकार राजेन्द्र जोशी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

नई दिल्ली के हिंदी भवन में पिछले दिनो शायर मंगल नसीम के यादगार 62वें जन्मदिन पर वरिष्ठ ग़ज़लकार सर्वेश चंदौसवी की अध्यक्षता में आयोजित मंगल उत्सव में मुख्य अतिथि कवि डॉ. कुँवर बेचैन एवं ओमप्रकाश प्रजापति, डॉ. पूनम माटिया, डॉ, पुष्पा जोशी, कवि रामकिशोर उपाध्याय, राजेश वर्मा, मनोज कामदेव, जगदीश मीणा, असलम बेताब, रामश्याम हसीन, संजय कुमार गिरि, दुर्गेश अवस्थी, विनोद कुमार आदि कवि, शायर, पत्रकारों ने विभिन्न प्रकार के उपहारों से उन्हें सम्मानित किया। इस अवसर पर ग़ज़ल गायक जगदीश भारद्वाज ने नसीम की चुनिन्दा ग़ज़लों को स्वर दिया। मंगल उत्सव का संचालन कवि पी के आजाद ने किया।

पंजाब यूनिवर्सिटी में कवि मनमोहन की पंजाबी कविताओं के अनुवाद का पाठ

चंडीगढ़। साहित्य अकादमी और पंजाब यूनिवर्सिटी के गुरु नानक सिख अध्ययन विभाग के संयुक्त तत्वावधान में पिछले दिनों यहां पंजाब यूनिवर्सिटी के गुरु तेग बहादुर भवन में कवि अनुवादक कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें कवि-अनुवादक शृंखला के तहत प्रसिद्ध कवि एवं उपन्यासकार मनमोहन की पंजाबी कविताओं और उनके अनुवाद का वाचन किया गया।

कार्यक्रम की प्रोग्राम को-ऑर्डिनेटर प्रो. जसपाल कौर कांग ने बताया कि साहित्य अकादमी अवॉर्ड से सम्मानित डॉ. मनमोहन की पंजाबी की चुनिंदा रचनाओं का अंग्रेजी में वरिष्ठ पत्रकार निरुपमा दत्त और हिंदी में सांव ऋचा ने अनुवाद प्रस्तुत किया।

प्रोग्राम को-ऑर्डिनेटर प्रो. जसपाल कौर कांग ने साहित्य अकादमी के प्रयासों की सराहना करते हुए कहा कि अकादमी ने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए अनुवाद की जो पहल की है, अनुकरणीय है। इस तरह से भारतीय भाषाओं के बीच अंतर संबंध स्थापित होगा। इन भाषाओं के अनुवाद से पूरे देश की संस्कृति को समझने का मौका मिलेगा।

पंजाब यूनिवर्सिटी के पंजाबी विभाग के अध्यक्ष प्रो. योगराज ने मनमोहन की काव्यधर्मिता के सूक्ष्म पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कवि की कई रचनाओं का उल्लेख कर शैलीगत विशेषताओं पर खुलकर बात की। साहित्य अकादमी के असिस्टेंट एडिटर ज्योति कृष्ण वर्मा ने भी कार्यक्रम में सक्रिय भागीदारी निभाई।

ललित कलाएं पांच बहनों की तरह : प्रो. भारत भूषण

गोरखपुर (उ.प्र.)। यहां पिछले दिनो रैंपस स्कूल में प्रेमचंद श्रीवास्तव के जन्मदिवस पर गोरखपुर थियेटर एसोसिएशन की ओर से आयोजित कार्यक्रम में गोरखपुर यूनिवर्सिटी के ललित कला विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. भारत भूषण ने कहा कि ललित कलाएं पांच बहनों की तरह हैं। वे भी ऐसी, जो एक-दूसरे के बिना अधूरी हैं। चित्र, मूर्ति, साहित्य और संगीत से मिलकर मंच बनता है। इन्हीं से नाटक उपजता है और अभिनय भी। इनके बिना कुशल अभिनेता और उत्तम निर्देशक बनना संभव नहीं है।

उन्होंने कहा कि एक कला को आगे बढ़ाने के लिए दूसरी विधा मददगार साबित होती है। उन्होंने रंगकर्मियों को अभिनय में निखार लाने के लिए स्वाद परिवर्तन की सलाह देते हुए कहा कि थोड़ा प्रयास इन कलाओं के लिए भी करें। मुख्य वक्ता देवेंद्र आर्य ने कहा कि अकेले किसी कला का विकसित हो पाना कठिन है, खासकर रंगकर्म के लिए। एक रंगकर्मी समाज से जुड़े बिना अच्छा मंच प्रस्तोता नहीं हो सकता। नाटक के लिए स्क्रिप्ट जरूरी है। चित्र, मूर्ति, और संगीत को एक बार के लिए रंगकर्मी नजरअंदाज भी करे तो भी वह किसी सूरत में साहित्य से मुंह नहीं मोड़ सकता।

रंगकर्मी प्रदीप प्रविज्ञ ने कहा कि आज के दौर में रंगकर्मियों में थोड़ी निराशा है, लेकिन हताश होने की जरूरत नहीं। परिस्थितियां कैसी भी हों, रंगकर्म कभी खत्म नहीं होगा। विशिष्ट अतिथि डॉ. शरद मणि त्रिपाठी ने प्रेमचंद द्वारा गोरखपुर थियेटर एसोसिएशन की स्थापना का उद्देश्य जाहिर करते हुए कहा कि यह सिर्फ एक संस्था नहीं थी बल्कि हर उस विधा के संरक्षण एवं संवर्धन का प्रयास था जिससे रंगकर्मी जुड़े थे। रविशंकर खरे ने बाहर के रंगकर्मियों को भी नाट्य मंचन के लिए आमंत्रित करने की अपील की। संचालन मानवेंद्र त्रिपाठी ने किया। कार्यक्रम में मुमताज खान, शैवाल श्रीवास्तव, प्रेमशंकर आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

लघु पत्रिकाओं का ऋणी है साहित्य : लक्ष्मण केडिया

लखनऊ। प्रेस क्लब में व्हाट्सअप ग्रुप 'मणिका' द्वारा आयोजित 'सामाजिक जड़ता और समकालीन साहित्य के बीच लघु पत्रिकाओं की भूमिका' विषयक संगोष्ठी और पत्रिका विमोचन समारोह को बतौर मुख्य अतिथि सम्बोधित करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मण केडिया ने कहा कि लघु पत्रिकाओं ने हिन्दी साहित्य को वैचारिक दृष्टि से समृद्ध किया है। इस कारण साहित्य इन पत्रिकाओं का ऋणी है।

संगोष्ठी में युवा आलोचक अजीत प्रियदर्शी ने कहा कि हिन्दी साहित्य का गंभीर पाठक लघु पत्रिकाओं की ओर ललचाई दृष्टि से देखता है। इन पाठकों की खुराक इन्हें पढ़ने के बाद ही पूरी होती है। साहित्यकार बृजेश नीरज ने कहा कि बाजार के खतरों को बाजार के हथियार से ही पराजित किया जा सकता है। ज्ञानेन्द्र विक्रम सिंह 'रवि' ने कहा कि लघु पत्रिकाएं न उच्च वर्ग की जड़ता को प्रभावित कर सकती हैं, न निम्न वर्ग की जड़ता को तोड़ सकती हैं। मध्यवर्ग इनका कार्य क्षेत्र है। यहां ये सफल हैं। उमाशंकर परमार ने कहा कि हिन्दी साहित्य के अधिकांश बड़े साहित्यकार लघु पत्रिकाओं की उपज हैं।

संगोष्ठी की अध्यक्षता मधुकर अस्थाना ने और संचालन मनोज शुक्ल 'मनोज' ने किया। आभार ज्ञापन कवयत्री प्रियंका पांडेय ने किया। संगोष्ठी में साहित्यकार कैलाश निगम, मंतव्य के सम्पादक हरेप्रकाश उपाध्याय, निकट की संपादक प्रज्ञा पाण्डेय, प्रद्युम्न कुमार सिंह, प्रदीप कुमार सिंह कुशवाहा, सौरभ श्रीवास्तव, व्यंग्यकार अनूपमणि त्रिपाठी आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

संताली और खोरठा को बढ़ावा देने के लिए अनुवाद आवश्यक

देवघर (झारखंड)। साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली और रमा देवी बाजला महिला कॉलेज के संयुक्त तत्वावधान में पिछले दिनो 'पूर्व एवं उत्तर-पूर्व क्षेत्रों का लोक साहित्य : निरंतरता, विभिन्नताएं एवं विलय' विषय पर परिसंवाद का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का उदघाटन सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका के कुलपति डॉ मनोरंजन प्रसाद सिन्हा ने किया। स्वागत भाषण एवं आरंभिक वक्तव्य अंगरेजी की विभागाध्यक्ष सह साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली की अंगरेजी परामर्श मंडल की सदस्य डॉ रीता राय ने दिया। कुलपति ने कहा कि संताल परगना में प्रतिभाओं की कमी नहीं है। उन्हें ठीक प्रकार से उभारने की जरूरत है। क्षेत्रीय लोक साहित्य संताली, खोरठा आदि को भी उभारा जाना चाहिए। इसका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए। तभी क्षेत्रीय लोक साहित्य को बेहतर तरीके से बढ़ावा मिल सकेगा।

बांकुड़ा विश्वविद्यालय, बंगाल के गौतम बुद्ध सुराल, कोलकाता विश्वविद्यालय के डॉ संदीप मंडल एवं अर्णव भट्टाचार्य, जेके कॉलेज पुरुलिया के छंदम देव, असम विश्वविद्यालय के कुलपति शिवाशीष विश्वास, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम की शिवांगी विश्वास, कोलकाता विश्वविद्यालय के डॉ संदीप मंडल आदि ने अपने-अपने व्याख्यान प्रस्तुत किये। मंच संचालन व धन्यवाद ज्ञापन प्रो राजीव कुमार ने किया। कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ विनोद कुमार झा, डॉ राजीव कुमार, अंजुला मुर्मू, एएस कॉलेज के प्राचार्य डॉ फणिभूषण यादव, कॉलेज कमेटी सदस्य रमेश बाजला, डॉ छाया, व्याख्याता पीसी दास, डॉ उषा बांसुरी, डॉ रेखा कुमारी गुप्ता, डॉ किसलय सिन्हा, डॉ सुचिता कुमारी, डॉ पुनीत कौर सलूजा, प्रो ममता कुजूर, प्रो जूगनू कुमारी सिंह, प्रो एसएस प्रसाद सहित काफी संख्या में छात्राओं की भी उपस्थिति रही।

पहली बार झारखंड की धरती पर आदिवासी लेखिका सम्मेलन

रांची (झारखंड)। आदिवासी लेखिकाओं से भारतीय साहित्य बहुत परिचित नहीं है। इसी को ध्यान में रखते हुए साहित्य अकादमी ने यहां देश में पहली बार झारखंड भाषा साहित्य संस्कृति अखाड़ा के सहयोग से अखिल भारतीय आदिवासी लेखिका सम्मेलन का आयोजन किया। इस दृष्टि से इस प्रदेश की राजधानी में पिछले दिनो आयोजित हुए देश के पहले अखिल भारतीय आदिवासी लेखिका सम्मेलन को एक ऐतिहासिक साहित्यिक परिघटना माना जा रहा है।

हिंदी की पहली आदिवासी लेखिका एलिस

एक्का (1917-2017) की जन्मशताब्दी के अवसर पर आयोजित इस सम्मेलन में इस मिथ्या अवधारणा को नकारा गया कि लिखित साहित्य में आदिवासियों का प्रवेश आजादी के बाद हुआ है अथवा आजादी से पूर्व वे शिक्षा और विकास की पहुंच से दूर थे, स्वतंत्रता के बाद ही उन्हें शिक्षित होने का अवसर मिला, या कि आदिवासी समुदाय जागरूक हुए और अस्सी-नब्बे के दशक से वे लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हुए।

सम्मेलन में वक्ताओं ने कहा कि एलिस एक्का पचास-साठ के दशक में हिंदी कहानियां लिखती थीं। अंग्रेजी साहित्य में ग्रेजुएट एलिस ने कहानियां लिखने के साथ खलील जिब्रान को भी हिंदी में अनूदित किया। एलिस की तरह ही मुंडा आदिवासी समुदाय की सुशीला 1925 में हिंदी की साहित्यिक पत्रिका 'चांदनी' का प्रकाशन-संपादन करती थीं और इनका पहला हिंदी काव्य-संग्रह 'प्रलाप' 1934 में छप चुका था। 'प्रलाप' की भूमिका तत्कालीन 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक देवीदत्त शुक्ल ने लिखी थी। यानी आदिवासी लोग, जिनमें महिलाएं भी समान रूप से शामिल हैं, बीसवीं सदी की शुरूआत से ही साहित्य रचना में संलग्न थे। अपनी आदिवासी भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी। इसलिए यह कहना कि आदिवासी नब्बे के दशक से लिख रहे हैं और भाषाई दूरी के कारण भारत का साहित्यिक जगत उनसे वाकिफ नहीं है, तथ्यसंगत नहीं है।

वक्ताओं का मानना था कि ओड़िया, बांग्ला, तेलुगु, कन्नड़, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं की उन्हीं महिला साहित्यकारों को देश का साहित्यिक जगत जानता है जिनकी कृतियां हिंदी या अंग्रेजी में अनूदित हैं। जैसे कमला दास, प्रतिभा राय, महाश्वेता देवी आदि। ऐसे में आदिवासी महिला लेखिकाएं जो हिंदी व अंग्रेजी से इतर अनेक आदिवासी भाषाओं में लिख रही हैं उनसे यह देश नावाकिफ है तो इसे पहली नजर में भाषाई दूरी मान लेने में कोई हर्ज नहीं है। क्या वाकई में यह सिर्फ भाषाई अपरिचय और दूरी का मसला है जिसके कारण भारत का साहित्यिक जगत आदिवासी लेखिकाओं के रचनात्मक अवदान से अपरिचित हैं? या फिर इसके पीछे सांस्कृतिक और राजनीतिक कारण भी है जिसका सवाल देश का आदिवासी समाज औपनिवेशिक काल से अब तक लगातार उठाता आ रहा है।

देश के साहित्यिक जगत में आदिवासी महिला रचनाकारों का रांची में हुआ यह पहला जुटान कई दृष्टि से उल्लेखनीय माना जा रहा है। पहली बात तो यही कि इसका आयोजन झारखंड की स्थानीय सामुदायिक संस्था झारखंड भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा के सहयोग से साहित्य अकादमी ने किया। अपने 62 सालों के इतिहास में इससे पहले साहित्य अकादमी ने किसी आदिवासी लेखक की न तो जन्मशती मनायी और न ही उसने आदिवासी लेखिकाओं के साहित्यिक अवदान पर कोई कार्यक्रम आयोजित किया। हमें जानना चाहिए कि देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक विकास के लिए साहित्य अकादमी के गठन का प्रस्ताव 1944 में रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल ने भारत सरकार को दिया था। इसी प्रस्ताव के आलोक में 12 मार्च 1954 को साहित्य अकादमी औपचारिक रूप से अस्तित्व में आई, लेकिन आज तक अकादमी सिर्फ आठवीं अनुसूची में दर्ज भाषाओं के साहित्य तक ही सीमित रही है।

ऐसे में अकादमी द्वारा एलिस एक्का की जन्मशती पर दो दिवसीय अखिल भारतीय आदिवासी लेखिका सम्मेलन का आयोजन किया जाना स्वागतयोग्य तो है ही, यह इस बात का भी संकेत है कि आदिवासी सृजन और साहित्य की उपेक्षा अब संभव नहीं है। पहले आदिवासी लेखिका सम्म२लन में राजस्थान, दिल्ली, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, ओडिशा, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड सहित 12 राज्यों से 40 से ज्यादा आदिवासी लेखिकाओं ने भागीदारी की।

जर्मनी में कविता पाठ करेंगे गुरमीत बेदी

हिमाचल। राज्य सूचना एवं जनसंपर्क विभाग के उप निदेशक कवि गुरमीत बेदी 21 जनवरी 2017 को जर्मन की राजधानी बर्लिन में आयोजित 'वर्ल्ड पोइट्री फेस्टिवल' में कविता पाठ करेंगे। उन्हें हिंदी भाषा को बढ़ावा देने में उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित भी किया जाएगा। जर्मनी की युवा कवयित्री रोजविटा बेदी की कविताओं का जर्मनी में लिप्यांतरण करेंगी। फेस्टिवल में विश्व के 35 देशों के कवि भाग लेंगे। बेदी अपने कविता संग्रह 'मौसम का तकाजा' के लिए हिमाचल साहित्य अकादमी से सम्मानित हो चुके हैं।

डॉ. अंजना सैनी का सम्मान

पंचकूला (हरियाणा)। संस्कृति अकादमी पंचकूला, गुगन एजुकेशनल एवं सोशल वेलफेयर सोसायटी की ओर से पुरानी मंडी निवासी डॉ. अंजना सैनी को सरबती देवी-गिरधारी लाल सिहाग साहित्य सम्मान से विभूषित किया गया। समारोह में हरियाणा संस्कृत अकादमी के निर्देशक डॉ. सोमेश्वर दत्त शर्मा, आचार्य रमेश मिश्रा, पं माधव प्रसार मिश्र, डा. राजकुमारी शर्मा आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

'हमर धरोहर' का विमोचन एवं सम्मान

बालोड (छत्तीसगढ़)। अंचल के कवि व लेखक टिकेश्वर सिन्हा गब्दीवाला के छत्तीसगढ़ी गद्य संग्रह 'हमर धरोहर' का विमोचन ग्राम गब्दी में हुआ। इस अवसर पर डॉ. पीसीलाल यादव गंडई, चुरामन गांगुली, विश्राम चंद्राकर, लेखिका डा. शैलचंद्रा नगरी, सीताराम साहू, जगदीश देशमुख, केशव साहू, पुष्कर राज, माधुरी सिन्हा आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

डॉ. बृजेश सिंह के शोध ग्रंथों का विमोचन

बिलासपुर (छत्तीसगढ़)। पिछले दिनो राजभाषा आयोग के अध्यक्ष डॉ. विनय कुमार पाठक, पावर ग्रिड के अपर महाप्रबंधक एसके घोष, डॉ. शिवमंगल सिंह एवं डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह ने साहित्य पर केंद्रित डॉ. बृजेश सिंह के तीन शोध ग्रंथ का विमोचन किया। डॉ. पाठक ने कहा कि 50 से अधिक ग्रंथों की रचना कर डॉ. सिंह राष्ट्रकवि व राजर्षि के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। यह छत्तीसगढ़ के लिए गौरव का विषय है। इस अवसर पर डॉ. डीएस ठाकुर को साहित्य गौरव सम्मान से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में अनिल टाह, एसके सिंह, डॉ. दशरथ अग्रवाल, राघवेंद्र दुबे आदि मुख्य रूप से उपस्थित रहे।

'देखता हूं ख्वाब' का विमोचन

समस्तीपुर (बिहार)। शहर के भवानी सिनेमाघर में पिछले दिनो गोविंद राकेश के ग़ज़ल संग्रह 'देखता हूं ख्वाब' का विमोचन एवं सह अंतर प्रांतीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्रख्यात कवि डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने दीप प्रज्ज्वलन के बाद अपने सम्बोधन में कहा कि ग़ज़ल साहित्य का बचपन होता है। ग़ज़ल से कवि-शायर अपने सफर की शुरूआत करते हैं। समारोह को चांद मुसाफिर, गगन देव चौधरी, रमेश झा आदि ने भी सम्बोधित किया। बाद में डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, शंकर कैमुरी, डॉ. मोअज्जम अज्म, सदरे आलम गौहर, कासिम खुर्शीद, आराधना प्रसाद, गुलाम रसूल आदि ने कविता पाठ किया।

'निनाद' का समवेत लोकार्पण

सहरसा (बिहार)। यहां पिछले दिनो रमेश झा महिला कॉलेज में मैथिली के समालोचक आचार्य रमानाथ झा की 111वीं जयंती के अवसर पर अजीत आनंद, डा. रामचैतन्य धीरज, डा. रेणु डा. ज्योतिवर्द्धन आदि ने आचार्य की साहित्यिक साधना पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम में डा. कृष्णमोहन ठाकुर लिखित मैथिली नाट्य आलोचना की पुस्तक 'निनाद' का समवेत लोकार्पण किया गया। संचालन शैलेन्द्र शैली ने किया।

इकराम राजस्थानी के ग़ज़ल संग्रहों का विमोचन

दिल्ली। पिछले दिनो यहां गीतकार एवं समाचार वाचक इकराम राजस्थानी के दो ग़ज़ल संग्रहों 'मरुधरा सूं निपज्या गीत' और 'कलम जिन्दा रहे' का लोकार्पण हुआ। वाणी प्रकाशन की निदेशक अदिति माहेश्वरी के अनुसार 'इकराम राजस्थानी विश्व के प्रथम कवि हैं, जिन्होंने 'कुरान शरीफ' का राजस्थानी और हिन्दी भाषा में भावानुवाद किया है।' उल्लेखनीय है कि उन्होंने और रवीन्द्रनाथ टैगोर की विश्वप्रसिद्ध कृति 'गीतांजलि' एवं हजरत शेख सादी की पुस्तक 'गुलिस्तां' का भी राजस्थानी में काव्यानुवाद किया है।

'पीड़ा अपनी-अपनी' का विमोचन

पटियाला (पंजाब)। शहर के डीएवी पब्लिक स्कूल में पिछले दिनो डॉ. मनमोहन सहगल की अध्यक्षता में आयोजित मालवा साहित्य कला मंच के समारोह में कुलभूषण कालड़ा के काव्य संकलन 'पीड़ा अपनी-अपनी' का पंजाबी भाषा विभाग की डायरेक्टर गुरशरण कौर एवं प्रो. कुलवंत ग्रेवाल ने विमोचन किया। बाद में उपस्थित कवियों ने सरस काव्य पाठ किया। मंच का संचालन डॉ. महेश गौतम ने किया। कुलभूषण कालड़ा प्रतिष्ठित कवि होने के साथ ही कहानीकार और उपन्यासकार भी हैं। इनकी दो पुस्तकें भाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं।

'दीवार में आले' का लोकार्पण

नई दिल्ली। राजधानी के विष्णु दिगम्बर मार्ग स्थित हिन्दी भवन में पिछले दिनो प्रतिष्ठित साहित्यकारों की गरिमामयी उपस्थिति एवं युवा उत्कर्ष साहित्य मंच के तत्वावधान में कवि रामकिशोर उपाध्याय के काव्य-संग्रह 'दीवार में आले' का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ व्यंग्यकार अनूप श्रीवास्तव ने की। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि आलोचक प्रो. ऋषभ देव शर्मा एवं मुख्य अतिथि रहे 'जन सन्देश

टाइम्स' के संपादक सुभाष राय। अतिथि द्वय ने संग्रह की रचनाओं पर सविस्तार प्रकाश डाला। इस अवसर पर मंच की ओर से डा.हरिसुमन बिष्ट, संजय कुमार गिरि, मीरा शलभ को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में लेखक डॉ. अशोक मैत्रेय, कथाकार डॉ. हरिसुमन बिष्ट, शैलेन्द्र कपिल, कवि प्रेम भारद्वाज, डॉ.देव नारायण शर्मा, चेतन आनंद, कवयित्री मीरा शलभ, अकेला इलाहाबादी, वरिष्ठ पत्रकार ओम प्रकाश प्रजापति, डा.पवन विजय, डा.रमेश तिवारी, सुरेशपाल वर्मा जसाला, वसुधा कनुप्रिया आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। मंच संचालन डॉ. पुष्पा जोशी एवं ओमप्रकाश शुक्ल ने किया।

भारतीय मूल के तीन लेखक पुरस्कार की दौड़ में

लंदन। बुकर पुरस्कार विजेता अरविन्द अडिगा अपने नवीनतम उपन्यास सलेक्शन डे के लिए ब्रिटेन के 25,000 डॉलर के वार्षिक दक्षिण एशियाई साहित्य पुरस्कार की दौड में हैं। दक्षिण एशियाई साहित्य पुरस्कार डीएससी प्राइज के लिए अडिगा (42) के साथ भारत और श्रीलंका से ताल्लुक रखने वाले चार अन्य लेखक भी दौड में हैं। इन लोगों में मुंबई में जन्मीं अंजलि जोसेफ (द लिविंग), कोलंबो में जन्मे अनुक अरद्प्रगासम, (द स्टोरी ऑफ ब्रीफ मैरिज), टेक्सास निवासी भारतीय लेखक करन महाजन (द एसोसिएशन ऑफ स्माल बांब्स) और भारतीय-अमेरिकी स्टीफन अल्टर (इन जंगल्स ऑफ नाइट) शामिल हैं। ज्यूरी अब विजेता तय करेगी जिसकी घोषणा बांग्लादेश में 18 नवंबर को ढाका साहित्य उत्सव में की जाएगी।

मेहेंदले, सोमेश्वर को साहित्य अकादमी सम्मान

नई दिल्ली। साहित्य अकादमी प्रत्येक वर्ष दो श्रेणियों में छह भाषा सम्मान प्रदान करती है। अकादमी ने कालजयी एवं मध्यकालीन साहित्य तथा तुलु भाषा के क्षेत्र में किए गए महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 2016 का भाषा सम्मान प्रो. मधुकर अनंत मेहेंदले एवं डॉ. अमृत सोमेश्वर को देने का ऐलान किया है। प्रो. मधुकर अनंत मेहेंदले वेदों एवं महाकाव्यों, पालि और प्राकृत, ऐतिहासिक भाषिकी, महाभारत तथा अवेस्ता के विद्वान हैं। डॉ. सोमेश्वर ने तुलु भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य तथा गहन शोध किए हैं।

प्रीति गुप्ता प्रियांशी का सम्मान

लखनऊ (उ.प्र.)। मोती महल लॉन में लगे पंद्रहवें राष्ट्रीय पुस्तक मेले में पिछले दिनो अखिल भारतीय साहित्य उत्थान परिषद की ओर से साहित्य संगम एवं सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। इसमें गीताप्रेस (गोरखपुर) की प्रीति गुप्ता 'प्रियांशी' को 'साहित्य गौरव' सम्मान से नवाजा गया। इस अवसर देश भर से जुटे साहित्यकारों ने उनकी रचनाओं की सराहना की। अध्यापन से जुड़ी प्रीति की रचनाएं प्रायः देश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

साहित्य शिरोमणि अलंकरण से सम्मानित

धार (म.प्र.)। श्री साहित्य सभा इंदौर की ओर से आयोजित काव्य एवं सम्मान समारोह में पिछले दिनो ग़ज़लकार चंद्रसेन विराट एवं वरिष्ठ साहित्यकार रामकृष्ण सोमानी की मौजूदगी में अखिल भारतीय साहित्य परिषद के जिला अध्यक्ष शरद जोशी को शॉल, श्रीफल और प्रशस्ति-पत्र देकर साहित्य शिरोमणि अलंकरण से सम्मानित किया गया।

देश के 25 रचनाकारों का सम्मान

गाजीपुर (उ.प्र.)। गहमर वेलफेयर सोसाइटी की ओर से पिछले दिनो यहां तीन दिवसीय अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन में संजीव वर्मा सलिल, गंगा राम शर्मा, श्रवण कुमार उर्मलिया, डॉ. रश्मी, ओम प्रकाश क्षत्रिय, घनश्याम मैथिल अमृत, आशा शर्मा, राधेश्याम बंधु, विनोद कुमार पांडे, डा. प्रतिभा माही इंसा, पूनम आनंद, कपिल कुमार, डा. मुक्ता, डा. कुंवर वीर, समीर परिमल, रविता पाठक, कमला पति गौतम, सुलक्षणा अहलावत, वीणा श्रीवास्तव, चेतना उपाध्याय, डा. ज्योति मिश्रा आदि देश के 25 रचनाकारों को सम्मानित किया गया।

'कविकुंभ' का लोकप्रिय स्थायी स्तंभ 'शब्द-शिखर' ऐसे साधक कवि-साहित्यकारों के लिए है, जिनका श्रेष्ठ सृजन किन्हीं कारणों से उपेक्षित रह गया। इस स्तंभ में प्रकाशनार्थ स्वतंत्र लेखन का स्वागत है। इस विषय में बातचीत के लिए फोन (7983168101) अथवा पत्रिका के ई-मेल पर भी संपर्क किया जा सकता है।

डॉ. लवलेश दत्त को मिला 'प्रेमचंद कथा सम्मान'

हल्दीघाटी (राजस्थान)। बरेली (उ.प्र.) के युवा कवि-कथाकार डॉ. लवलेश दत्त को उनके कहानी लेखन के लिए पिछले दिनो राजस्थान के हल्दीघाटी स्थित महाराणा प्रताप संग्रहालय के साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान के चतुर्थ राष्ट्रीय अधिवेशन में 'प्रेमचंद कथा सम्मान' से समादृत किया गया। यह सम्मान उन्हें राजस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ. इन्दुशेखर तत्पुरुष ने प्रदान किया। डॉ. लवलेश दत्त की कहानियाँ, ग़ज़लें आदि देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। उनके दो कहानी संग्रह 'सपना' और 'श्यामा' प्रकाशित हो चुके हैं। इससे पूर्व वर्ष 2015 में उन्हें वाराणसी में स्वर्गीय डॉ. विवेकी राय द्वारा 'साहित्य श्री सम्मान' प्रदान किया गया था।

'टोंक साहित्य अवार्ड' से 50 विभूतियां सम्मानित

टोंक (राजस्थान)। मौलाना अबुल कलाम अरबी फारसी शोध संस्थान में पिछले दिनो टोंक आस्कर साहित्य अवार्ड कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसमें विभिन्न क्षेत्रों की करीब 50 प्रतिभाओं मनोज तिवाड़ी, रामपाल राकेट, लियाकत अली, शिक्षक गिरधर सिंह मालपुरा, हनुमान प्रसाद बोहरा, डा. सविता पारीक, इमदाद अली शमीम, डा. जिया टोंकी, डा. नुसरत फातिमा, इकबाल हसन टोंकी, आबिद आकिल, डा. मनु शर्मा, अमीर अहमद सुमन, मौलाना सलाउद्दीन कमर, एम. असलम, अशोक सक्सेना, समीउर्रहमान, जियाउद्दीन शेरू, बाबूलाल शास्त्री, मौलाना जमील, कुलदीप सिनसिनवार, हया फातिमा, एडवोकेट रईस अहमद, इकबाल हसन जुगनू, भरत शर्मा, राजेंद्र कुमावत, मोहित साहू, कवि प्रदीप पंवार, निजामुद्दीन शाद टोंकी, लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रीति वर्मा, रश्मि दोराया, सुमन मीणा, मतीउल्लाह अंसारी, निपुर्ण सक्सेना, रियाज राना, अजीजुल्लाह शीरानी आदि को सम्मानित किया गया। समारोह को शोध संस्थान के संस्थापन निदेशक साहबजादा शौकत अली खां, वर्तमान निदेशक साहबजादा सौलत अली खान, समाजसेवी पंडित सीताराम शर्मा अलियाबाद, योगेश सोमानी, एडवोकेट राधेश्याम गर्ग, विकास सोमानी, समाजसेवी अकबर खान, डा. सूरज सिंह नेगी, हनुमान प्रसाद बोहरा, राजकुमार करनानी आदि ने समारोह को सम्बोधित किया। मंच संचालन कवि प्रदीप पंवार ने किया।

कवि चिर आनंद सम्मानित

हिमाचल। 'शंखनाद' ने नाहन (सिरमौर) में पिछले दिनो अपने द्वितीय स्थापना समारोह में कवि चिरआनंद, पंकज तन्हा, दलीप वशिष्ठ, मुकुल शर्मा, अनिल हारटा, डॉ. संजीव अत्री, डॉ. बलबीर शर्मा, प्रो. अमर सिंह चौहान एवं कुणाल सचदेवा को स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया।

अमृतसर के साहित्यकारों का सम्मान

तरनतारन (पंजाब)। गंडियां वाली धर्मशाला स्थित भाई मोहन सिंह वैद लाइब्रेरी में पंजाबी साहित्य सभा के आयोजन में अमृतसर के साहित्यकारों का रघबीर आनंद ने सभा के प्रधान डॉ. तारा चंद दियालपुरी की अध्यक्षता में सम्मान किया। इस अवसर पर प्रभावशाली दरबार हुआ, जिसमें इंदरजीत सिंह तुड़, ज्ञानी अजीत सिंह, गुरमीत नूरदी, गुरमेज सिंह कैरों, जसविंदर सिंह, कारज सिंह, प्यारा सिंह, हरदेव सिंह गांधी, मक्खन सिंह भैणीवाला, दिलबाग हुंदल, राकेश सचदेवा ने रचनाएं पेश कीं।

कथा-गोष्ठी में कहानियों का पाठ

ग्वालियर (म.प्र.)। साहित्यकार कल्याण ट्रस्ट की ओर से महाराज बाड़ा स्थित केंद्रीय पुस्तकालय में गिरिजा कुलश्रेष्ठ की अध्यक्षता में ओजित कथा

गोष्ठी में डॉ. सुरेश सम्राट, संगीता गुप्ता, रामकृष्ण गुप्त, विजय कृष्ण योगी, रामवरण ओझा, आरती खेड़कर, कादंबरी आर्य, भारती पुजारी, श्वेता कुमार, डॉ. दीप्ति गौड़ ने अपनी कहानियों का पाठ किया। भोपाल के कथाकार विजय सक्सेना विपिन गोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। संचालन ट्रस्ट के सचिव माता प्रसाद शुक्ल ने किया। अंत में साहित्यकारों ने दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत डॉ. शिव बरुआ और रजनी मिश्र को श्रद्धांजलि अर्पित की।

पाठक मंच की गोष्ठी में साहित्य-चर्चा

ग्वालियर (म.प्र.)। मध्य भारतीय हिंदी साहित्य सभा की ओर से दौलतगंज स्थित साहित्य सभा भवन में पाठक मंच की गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद के निदेशक उमेश सिंह और अखिल भारतीय साहित्य परिषद के संगठन मंत्री श्रीधर पराडकर की मौजूदगी में साहित्य-चर्चा के साथ ही मंच के नियमित पाठकों ने सुझाव भी दिए। इस अवसर पर डॉ. ज्योत्सना सिंह, डॉ. रामकृष्ण गुप्त, डॉ. सुखदेव माखीजा, डॉ. भारती पुजारी, राजकिशोर वाजपेयी, सुमंत हिंदुस्तानी सहित काफी संख्या में लोग मौजूद रहे।

'रूल्स फॉर फूल्स' का विमोचन

लखनऊ। मशहूर व्यंगकार केपी सक्सेना के पुत्र और कवि-व्यंगकार संदीप सक्सेना के व्यंग संग्रह 'रूल्स फॉर फूल्स' का उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के निराला सभागार में पिछले दिनो प्रकाशनोत्सव हुआ। इस अवसर पर व्यंगकार गोपाल चतुवेर्दी ने कहा कि कहा कि संदीप के व्यंग लेखों में केपी सक्सेना की शैली का जरा सा भी प्रभाव नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि साहित्य में विरासत की परंपरा नहीं है। विशिष्ट अतिथि व्यंगकार सूर्यकुमार पाण्डेय ने कहा कि संदीप साहित्यिक वाद-विवादों से दूर रहकर सतत रचना कर्म में लगे हैं। इस अवसर पर उपन्यासकार सुधाकर अदीब, व्यंगकार पृथ्वीराज चौहान, अनूप श्रीवास्तव, आलोक शुक्ल, भोलानाथ अधीर, राजेश अरोड़ा शलभ, श्याम मिश्रा, अनूपमणि त्रिपाठी, पंकज प्रसून, मुकुल महान, संजीव जायसवाल, अशोक झंझटी, परवेश जैन, अंशुमन खरे, इन्द्रजीत कौर, वीणा सिंह, केके अस्थाना, नसीम साकेती, अरविन्द झा आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

जनकवि गिर्दा, पथिक, चंद्र कुंवर और डॉ. उमाशंकर की स्मृतियां ताजा हुईं

श्रीनगर (उत्तराखंड)। स्थानीय सरस्वती शिशु मंदिर में आखर समिति की ओर से पिछले दिनो जनकवि गिरीश तिवाड़ी गिर्दा, गढ़कवि धमार्नंद उनियाल पथिक, कवि चंद्र कुंवर बर्त्वाल एवं रंगकर्मी डा. उमाशंकर थपलियाल की स्मृतियां ताजा हुईं। इस अवसर पर मुख्य अतिथि रंगकर्मी प्रो.डीआर पुरोहित, बीपी घिल्डियाल, रोटरी क्लब की पूर्व अध्यक्ष शकुंतला रावत, गंगा असनोड़ा थपलियाल, देवेश्वर प्रसाद खंडूडी, ग़ज़लकार पयाश पोखड़ा ने दिवंगत विभूतियों के चित्रों पर माल्यार्पण कर उनकी जीवनी पर चर्चा-परिचर्चा के साथ ही समाज और साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को दोहराया गया। गढ़वाली कवि आरती पुंडीर, कुसुमलता ममगांई, रेखा रावत, अजय गुसांई, मोहित नेगी, नयन कोठियाल, राकेश जिरवान आदि ने काव्य पाठ किया। कार्यक्रम में आखर समिति के सचिव संदीप रावत, मुकेश काला, देवेंद्र उनियाल, अखिलेश चंद्र चमोला, दिलवर रावत, सुबोध हटवाल, दिनेश उनियाल विमला राणा, संगीता कोठियाल फरासी, रेखा रावत आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

हबीब तनवीर के रंगकर्म पर विमर्श

महेंद्रगढ़ (हरियाणा)। केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग की साहित्य समिति के तत्वावधान में आयोजित एक कार्यक्रम में पिछले दिनों रंगकर्मी हबीब तनवीर के नाटकों पर वक्ताओं ने विचार व्यक्त किए। ऋतु रानी ने बताया कि भारतीय रंगमंच में हबीब ने नए रंग और मुहावरे की तलाश की। उन्होंने अपने नाटकों में मुख्यतः छत्तीसगढ़ी लोक शैली और लोकतत्वों का प्रयोग किया। डॉ. अमित मनोज ने कहा कि हबीब तनवीर ने रंगमंच के माध्यम से अनगढ़ लोक कलाकारों को मुख्यधारा में शामिल किया। उन्होंने आगरा बाजार, चरनदास चोर, मिट्टी की गाड़ी जैसे प्रसिद्ध नाटकों का निर्देशन भी किया। इस अवसर पर चरनदास चोर का प्रदर्शन किया गया। कार्यक्रम का संचालन आलोक कुमार ने और धन्यवाद ज्ञापन प्रवीन कुमार ने किया। कार्यक्रम में शोधार्थी अमन, लल्टू कुमार, संदीप, माइकल आदि उपस्थित रहे।

बाल साहित्य पर समागम

होशियारपुर (पंजाब)। सरकारी मिडिल स्कूल भारत्ता गणेशपुर में 'बाल साहित्य और शिक्षा' विषय पर आयोजित सेमिनार को संबोधित करते हुए वाइस जिला शिक्षा अफसर एलिमेंट्री धीरज वशिष्ट ने कहा कि बाल साहित्य और शिक्षा का बहुत गहरा संबंध है। जब अध्यापक अपने विद्यार्थियों को बाल साहित्य का सुधी बनाते हैं, उनके विद्यार्थी दूसरों से ज्यादा मेहनती और लगनशील होते हैं। इसलिए सभी शिक्षकों को बाल साहित्य के महत्व प्रति सचेत होना चाहिए। बलजिंदर मान जैसे साहित्यकार बच्चों के भीतर इस तरह की संवेदना जगा रहे हैं। स्कूल मुखी बलजिंदर मान ने कहा कि आज शिक्षा में बाल साहित्य की जरूरत और भी बढ़ गई है। टी.वी. और नेट ने हमें हमारे अमीर विरसे से अलग किया है। इस समागम में पवन कुमार, भूपिंदर सैनी, गुरप्रीत कौर, सतवीर कौर और नीतू रानी ने अहम भूमिका निभाई। मुख्य अतिथि को बाल साहित्यकार मान ने अपनी पुस्तकों का सेट भेंट किया।

मुकुट बिहारी सरोज को समर्पित काव्य गोष्ठी

दिल्ली। आइपी एक्सटेंशन स्थित आइपैक्स भवन में पिछले दिनों 81वीं काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। साहित्य विभाग की ओर से आयोजित गोष्ठी कविता कोश के रचयिता स्व. मुकुट बिहारी सरोज को समर्पित रही। सोसायटी के प्रधान सुरेश च्बदल ने कहा कि कवि अपनी कविता की चंद लाइनों से समाज को आईना दिखाता है। कविताओं में हकीकत छिपी होती है। कवि अपनी कविताओं से लोगों में जोश और उमंग भरता है। इस अवसर पर कवि डॉ.टीएस दराल, चंद्र शेखर गोस्वामी ने काव्य-पाठ किया। गोष्ठी में सोसायटी के चेयरमैन सुशील गोयल, संयोजक आशु गुप्ता, कवयित्री सुधा कुमारी, सुषमा च्सह, विनय बहल, योगेंद्र बंसल, सतेंद्र अग्रवाल आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के योगदान पर संगोष्ठी

गोरखपुर (उ.प्र.)। यहां पिछले दिनो रेल अधिकारी क्लब में आयोजित एक संगोष्ठी में पूर्वोत्तर रेलवे के मुख्य यांत्रिक इंजीनियर अजय कुमार सिंह ने कहा कि सामाजिक विकास के लिए व्यक्ति एवं परिस्थितियों को यथावत स्वीकार कर इस दिशा में सकारात्मक दृष्टिकोण से प्रयास करना चाहिए। युवावस्था सृजन का विशेष कालखंड होती है। इस साहित्यिक समारोह में सम्बोधन का विषय था- 'भाषा एवं समाज के निर्माण में भारतेंदु का योगदान'। विशिष्ट अतिथि गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिदी विभाग के आचार्य प्रो. सदानंद गुप्त, प्रो. चितरंजन मिश्र, ललित नारायण मिश्र, सर्जन डा. संजय श्रीवास्तव, उप मुख्य राजभाषा अधिकारी धीरेंद्र कुमार आदि ने भारतेंदु हरिश्चंद्र के सामाजिक एवं साहित्यिक योगदान की चर्चा करते हुए उनके नव जागरण को रेखांकित किया। संगोष्ठी का संचालन वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी डा. संजय कुमार सिंह ने किया। राजभाषा अधिकारी ध्रुव कुमार श्रीवास्तव ने आभार ज्ञापित किया।

सरस काव्य-गोष्ठी का आयोजन

बेगूसराय (बिहार)। लोहिया नगर में पिछले दिनों एक सरस काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें कवयित्री रामा मौसम, अशांत भोला, दीनानाथ सुमित्र, रंजना सिंह, प्रफुल्ल मिश्र, शगुफ्ता तजवार, व्यंगकार संजय सिंह, रंजू ज्योति, आनंद रमन, नवीन कुमार आदि ने कविता पाठ किया। कार्यक्रम में नीरज देव, डॉ. राहुल, डॉ. रंजन चौधरी, डॉ. अभिषेक, डॉ. मुरारी मोहन, गौरव सिंह राणा, समीर सिंह चौहान, राजीव कुमार, रूपेश कुमार, अजय कुमार आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

लेखकों के साथ छात्रों ने किया संवाद

कुल्लू (हिमाचल)। रोपा स्थित ग्लोबल विलेज स्कूल में पिछले दिनो लेखक-छात्र संवाद का आयोजन किया गया, जिसमें स्कूली बच्चों ने विभिन्न विषयों पर लेखकों से संवाद किया। कार्यक्रम में गुरुकुल बहुमुखी शिक्षा संस्था की पत्रिका मणिका का लोकार्पण भी किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि एवं बाल कथाकार, कवि पवन चौहान, उपन्यासकार गंगा राम राजी, कवि-कथाकार कृष्ण चंद्र महादेवी के साथ छात्र-विमर्श रोचक एवं प्रेरक रहा। कार्यक्रम का संचालन भगवान प्रकाश ने किया। स्कूल के छात्रों ने कविता पाठ भी किया। पवन चौहान ने कहा कि लेखक-छात्र संवाद एक नया प्रयोग है और यह बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसे कार्यक्रम बच्चों में साहित्य पढ़ने की रुचि जगाते हैं। गंगा राम राजी ने कहा कि जिन भी संस्थाओं या व्यक्तियों ने साहित्य को चुना और साहित्य को अपने कार्य से जोड़ा, उनका हमेशा विकास हुआ है। बाद में तीनों लेखकों ने विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार देने के बाद उनके साथ अलग से कुछ समय बिताया।

अखिल भारतीय साहित्य गोष्ठी

दिल्ली। भारतीय विकास समिति दिल्ली प्रदेश एवं नवधारा साहित्य कला केंद्र के संयोजन में सुल्तान पुरी, बाहरी दिल्ली में अखिल भारतीय साहित्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता शायर देवेंद्र माँझी ने की और विशिष्ट अतिथि रहे गीतकार जयसिंह आर्य। ग़ज़लकार दुर्गेश अवस्थी के संचालन में इंद्रपाल ' इन्द्र', यूसुफ सहराई, ऐन मीन कौसर, राजीव पाराशर, दीपक मासूम, मनजीत, बुनियाद भारती, अरशद कमर, दिवाकर कुमार, शायर असलम बेताब, सुनील सबरंग, कुमार अनुज, सृजन शीतल, सुनील शर्मा, इब्राहिम अल्वी, संजय गिरि, राजेश मण्डार, जगदीश मीणा, संदीप तोमर, विजेंदर सिंह आदि कवियों ने अपनी रचनाओं से मंत्रमुग्ध किया। कवि रामश्याम हसीन एवं अशोक सोलंकी ने कवियों का स्वागत और धन्यवाद ज्ञापन किया।

कला भवन में कविता पाठ

पूर्णिया (बिहार)। साहित्य विभाग कला भवन की ओर से यहां डा. प्रभात कुमार वर्मा की अध्यक्षता में आयोजित कवि गोष्ठी में कवियों ने विभिन्न भावों और विचारों की कविताएं पढ़ीं। प्रो देवनारायण देव की भूख पर आधारित कविता, प्रो विजया रानी की कविता पैबंद, बाबा वैद्यनाथ के दोहे, किरण सिह की मैथिली भाषा में रचित कविता के अतिरिक्त निशा प्रकाश, शंभू शरण, व्यथित, बालगोपाल आदि की कविताएं श्रोताओं द्वारा खूब सराही गईं। कार्यक्रम का संयोजन डा निरूपमा राय और मंच संचालन डा केके चौधरी ने किया।

कवि पाश को समर्पित विचार-गोष्ठी

चंडीगढ़। वैकल्पिक प्रगतिशील संस्कृति और कला को बढ़ावा देने के लिए बने संगठन पूर्वरंग की ओर से पंजाब यूनिवर्सिटी के गांधी भवन में पिछले दिनो 'पाशः उनका समय और उनकी कविता' विषय पर आयोजित गोष्ठी में कवि-पत्रकार सुखविन्दर ने कहा कि पाश पंजाबी साहित्य के मील के पत्थर हैं, जिन्होंने खुली कविता में नए तजुर्बे से अपनी तरह की काव्य-धारा को प्रवाह दिया। पाश ने जनता के जज्बातों को पन्ने पर उतारा। शायद आम आदमी की आवाज बनने की वजह से वह मारे जाने के 29 सालों बाद भी लोगों के दिलों में जिंदा हैं। आज पंजाब बहुत बदल चुका है लेकिन उनकी आवाज शहरी मजदूरों की एक बड़ी आबादी में आज भी गूंजती रहती है।

साहित्यकार सुखचैन सिंह भंडारी को अवार्ड

सिरसो वरिष्ठ पंजाबी-हिंदी साहित्यकार एवं हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी पंचकूला के पूर्व निदेशक सुखचैन सिंह भंडारी को नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय प्रकाशन संस्थान फ्रेंडशिप फोरम ऑफ इंडिया की ओर से बेस्ट इंडियन गोल्डन पर्सनेलटीज अवार्ड 2017 देने की घोषणा की गई है। इस आशय की सूचना फोरम के महासचिव रवनीश वाही ने फोरम की ओर से एक पत्र के माध्यम से भंडारी को दी है। उन्होंने अपने इस पत्र में यह सम्मान भंडारी द्वारा गत 50 वर्षों से निरंतर साहित्य लेखन एवं हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी में वर्ष 2011 से लेकर 2014 तक हरियाणा में किए गए उल्लेखनीय पंजाबी भाषा और साहित्य के विकास के लिए देने का ऐलान किया है।

दुष्यंत की याद में ग़ज़ल-गोष्ठी

शिवपुरी (म.प्र.)। नई ग़ज़ल के प्रवर्तक दुष्यंत कुमार केवल 42 वर्ष जिए और केवल 52 ग़ज़लें कहीं, जो उनके एकमात्र ग़ज़ल संग्रह साए में धूप में संकलित हैं। किंतु उन्हें आज भी याद किया जाता है क्योंकि साहित्य में मात्रा नहीं, गुणवत्ता महत्वपूर्ण होती है। यह विचार डॉ लखनलाल खरे ने रामकिशन सिंघल फाउंडेशन द्वारा स्थानीय दुर्गा मठ में आयोजित ग़ज़ल गोष्ठी में मुख्य अतिथि की आसंदी से व्यक्त किए। कार्यक्रम के प्रारंभ में संस्था सचिव महेंद्र अग्रवाल ने उपस्थित अतिथियों का स्वागत करते हुए दुष्यंत की ग़ज़लों पर प्रकाश डाला। ग़ज़ल गोष्ठी में इरशाद जालौनबी, जगदीश दर्द, ओमप्रकाश शर्मा प्रखर, विजय भार्गव, नितेश कोठारी, प्रदीप अवस्थी, त्रिलोचन जोशी, युसुफ अहमद कुरेशी, डॉ महेंद्र अग्रवाल, डॉ अजय ढींगरा, रफीक इशरत, डॉ लखनलाल खरे ने अपने ग़ज़ल पाठ से दुष्यंत का स्मरण किया।

चित्रलेखा और पिंजर पर विमर्श

अररिया (बिहार)। द्विजदेनी स्मारक उच्च विद्यालय के प्रांगण में पिछले दिनो कवि-साहित्यकार भगवती चरण वर्मा एवं अविस्मरणीय लेखिका अमृता प्रीतम के साहित्य पर विमर्श हुआ। उमाकांत दास, हेमंत यादव, केदारनाथ कर्ण, महेंद्र नाथ झा, हर्ष नारायण दास, प्रो. परमेश्वर साह एवं विनोद कुमार तिवारी ने भगवती चरण वर्मा की अमर कृतियों चित्रलेखा, भूले बिसरे चित्र, पतन, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, वसीयत, मोचार्बंदी, रेखा आदि पर विचार व्यक्त किए। इसी तरह अमृता प्रीतम की कृतियां रसीदी टिकट, पिंजर आदि विमर्श के केंद्र में रहीं। कार्यक्रम में शिवनारायण चौधरी, बलराम बनर्जी, अरविन्द ठाकुर, राजनारायण प्रसाद, श्यामा नन्द यादव, सुरेन्द्र प्रसाद मंडल, दीनानाथ उपाध्याय आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

रचनाकारों के ध्यानार्थ

- **समय से प्रकाशन के लिए रचनाएं वर्ड फाइल, यूनिकोड हिंदी फॉन्ट में ही ई-मेल kavikumbh@gmail.com पर प्रेषित करना सुविधाजनक होगा, अन्यथा तकनीकी कारणों से उनके प्रकाशन में अनावश्यक विलंब संभव है।**
- **रचना अप्रकाशित हो अथवा प्रकाशित, वह 'कविता के नाम पर कविता' जैसी नहीं, बल्कि स्तरीय हो। उसके साथ आपकी फोटो, परिचय, पिनकोड-फोन नंबर सहित डाक पता जरूरी है ताकि संबंधित अंक आपको उपलब्ध कराया जा सके।**
- **पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से केवल 'कविकुंभ' सदस्य परिवार को ही प्रेषित की जाती है। रचनाकारों एवं अन्य सुधीजन के लिए पत्रिका सामान्य डाक से भेजना विवशता है।**
- **पत्रिका में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित समकालीन साहित्यिक विषयों पर आपकी रचनात्मक सहमति-असहमति, पत्र एवं विषयगत सुझावों का स्वागत है।**
- **शब्द-संकलन के अंतर्गत समीक्षा-सामग्री के साथ कृपया पुस्तक की दो प्रतियां प्रेषित करना अनिवार्य है।**
- **डाक से रचना-सामग्री इस पते पर प्रेषित की जा सकती है - रंजीता सिंह, संपादक 'कविकुंभ', 50 आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001.**

राजस्थान में साहित्य-संस्कृति का बारह दिवसीय अंतरराष्ट्रीय महाकुंभ

हिंदी सम्मेलन में सृजनकर्मियों का सम्मान

जयपुर (राजस्थान)। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी और हिंदी-संस्कृति को प्रतिष्ठित करने के लिए बहुआयामी साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था सृजन-सम्मान, छत्तीसगढ़/साहित्यिक वेब पत्रिका सृजनगाथा डॉट कॉम द्वारा, किये जा रहे प्रयास और पहल के अनुक्रम में अब राजस्थान में 01 अक्तूबर से 12 अक्तूबर, 2017 तक आयोजित हो रहा है। हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि, चित्रकार ऋतुराज सम्मेलन उद्घाटन समारोह के विशिष्ट अतिथि के रूप में शामिल हो रहे हैं। इसमें देश, विदेश के कवि-साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी बड़ी संख्या में उपस्थित हो रहे हैं। सम्मेलन के दौरान देश-विदेश के रचनाकारों को बड़ी संख्या में सम्मानित किया जा रहा है।

कवि-साहित्यकार जयप्रकाश मानस के नेतृत्व एवं सवाई सिंह शेखावत के मुख्य संयोजन में हो रहे अपनी तरह के इस अनोखे समारोह में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी रचनाकारों का मेला सा लग रहा है। सम्मेलन में हिंदी के चयनित आधिकारिक विद्वान, अध्यापक, लेखक, भाषाविद्, शोधार्थी, संपादक, पत्रकार, संगीतकार, गायक, नृत्यकार, चित्रकार, बुद्धिजीवी एवं हिंदी सेवी संस्थाओं के सदस्य, हिन्दी-प्रचारक, हिंदीब्लागर्स, टेक्नोक्रेट आदि स्वेच्छा से सहभागिता निभा रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन द्वारा राजस्थान के सात वरिष्ठ व्यक्तित्वों को विभन्न अनुशासनों में उनके समग्र और रचनात्मक योगदान के लिए विशिष्ट सम्मान 'सृजनश्री' से अलंकृत किया जा रहा है। सम्मेलन द्वारा चयनित रचनाकारों में आलोचक डॉ. जीवन सिंह, कहानीकार चरण सिंह 'पथिक', कवि विनोद पदरज, संगीतकार मधुभट्ट तैलंग, लोकसंगीतकार मंगी बाई, शिक्षाशास्त्री रमेश थानवी और संस्कृतिकर्मी रणवीर सिंह प्रमुख हैं। अंहिस के उपाध्यक्ष डॉ. रंजना अरगड़े तथा स्थानीय संयोजक सेवाई सिंह शेखावत के अनुसार इस विभूतियों को 01 अक्तूबर को सूचना केंद्र, एस.एम.एस.हॉस्पिटल मार्ग, जयपुर में शाम 5 बजे आयोजित अंलकरण समारोह में सम्मानित किया जा रहा है।

सम्मेलन का मुख्य उद्देश्यदेश-विदेश में सृजनरत स्थापित-नवागत रचनाकारों को जोड़कर स्वंयसेवी आधार पर भाषायी-संस्कृति का प्रचार-प्रसार, साहित्य की सभी विधाओं और उसमें सक्रिय रचनाकारों का प्रजातांत्रिक सम्मान, भाषायी सौहार्द्रता, विविध भाषाओं की रचनाशीलता से परस्पर तादात्म्य और श्रेष्ठता का अनुशीलन व सम्मान, ज्ञानात्मक सहिष्णुता के लिए सकारात्मक प्रयास, विभिन्न देशों/प्रदेशों का साहित्यिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-वैकासिक अध्ययन-परीक्षण-पर्यटन सहित वैश्वीकरण की जगह वसुधैव कुटुम्बकम् को प्रोत्साहित करना है। प्रतिष्ठित कवि, लेखक डॉ. आईदान सिंह भाटी सम्मेलन में विशिष्ट अतिथि के रूप में सहभागी बन रहे हैं। राजस्थान के प्रतिष्ठित कवि अम्बिका दत्त की भी सम्मेलन में सार्थक सहभागिता है। सम्मेलन में वरिष्ठ कवयित्री, लेखिका डॉ. पद्मजा शर्मा की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है।

सम्मेलन में भाषा, साहित्य, संस्कृति और

शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर रूप से सक्रिय दो प्रमुख और वरिष्ठ संस्कृतिकर्मी- रचनाकारों देवकिशन राजपुरोहित (अजमेर) और डॉ. राजेन्द्र पी. जोशी (बीकानेर) को उनके रचनात्मक योगदान के लिए संयुक्त रूप से वर्ष 2017 के 'प्रो. सहदेव सिंह स्मृति सम्मान" से पुरस्कृत किया जा रहा है। वर्ष 2017 का डॉ. उषा रानी सिंह स्मृति सम्मान वरिष्ठ समीक्षक-लेखिका डॉ. सुदेश बत्रा (जयपुर) को उनकी आलोचनात्मक कृति 'प्रतिरोध के स्वर' के लिए प्रदान किया जा रहा है। राजस्थान विश्वविद्यालय की पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, डॉ. बत्रा जी ने कई उल्लेखनीय कृतियों का प्रणयन किया है।

प्रथम डॉ. सीताराम दीन स्मृति सम्मान युवा आलोचक-कवि श्री श्रीरंग (इलाहाबाद) को उनकी आलोचनात्मक कृति 'कविता का संतापमान' के लिए प्रदान किया जा रहा है। श्रीरंग इलाहाबाद में पेशे से न्यायिक सेवा से संबंद्ध हैं तथा उनकी अनेक आलोचना संग्रह चर्चित हो चुकी हैं। 'सिन्धु रथ स्मृति सम्मान' वरिष्ठ कथाकार एवं गांधीवादी लेखिका, समाजसेवी डॉ. सुजाता चौधरी (भागलपुर) को उनकी कृति 'सौ साल पहले' तथा वरिष्ठ कवयित्री डॉ. प्रभा मुजुमदार (मुंबई) को उनके कविता संग्रह 'अपने हस्तिनापुरों में' के लिए प्रदान किया जा रहा है। तृतीय सलेकचंद जैन स्मृति सम्मान विदर्भ-महाराष्ट्र के मूर्धन्य पत्रकार, लेखक व संपादक कृष्ण नागपाल, (नागपुर) को पत्रकारिता पर उनकी महत्वपूर्ण कृति 'अजगर और मेमने' तथा वरिष्ठ यात्रा संस्मरण लेखक हेमचंद्र सकलानी (देहरादून) को उनकी कृति 'विरासतों की यात्रा' के लिए प्रदान किया जा रहा है। यह सम्मान सलेकचंद जैन स्मृति संस्थान दिल्ली द्वारा प्रतिवर्ष किसी विधा में उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदान किया जाता है ।

लेखन, पत्रकारिता तथा संपादन से संबद्ध जयपुर की युवा प्रतिभा देवयानी भारद्वाज की 2016 में प्रकाशित पहली काव्य-कृति 'इच्छा नदी के पुल पर' को प्रथम मेजर दिवजोत कौर चावला (दिवंगत) की स्मृति सम्मान-2017 हेतु चयन किया गया है। ग़ज़ल लेखन का 'नये पाठक सम्मान -2017' सीकर, राजस्थान के बहुचर्चित युवा शायर सलीम खां फरीद को उनकी कृति 'एक सवाये सुर को साधो !' के लिए दिया जा रहा है। कथा-लेखन का सृजनगाथा डॉट कॉम सम्मान ऐतिहासिक उपन्यासों के अप्रतिम शिल्पी और इतिहासकार डॉ. शरद पगारे (इंदौर) को उनके उपन्यास 'ज़िंदगी के बदलते रूप (वाणी प्रकाशन)' के लिए दिया जा रहा है। कविता का 'सृजनगाथा डॉट कॉम सम्मान-2017' वरिष्ठ कवि गोविंद माथुर को उनके कविता संग्रह 'मुड कर देखता है जीवन' के लिए दिया जा रहा है।

श्रद्धा-सुमन

प्रो. भोलानाथ मिश्र : बोलपुर (झारखंड)। विश्व भारती यूनिवर्सिटी (शांति निकेतन) में अध्यापनरत रहे साहित्यकार प्रो. भोलानाथ मिश्र का पिछले दिनो यहां देहावसान हो गया। वह काफी समय से बीमार चल रहे थे। वह मूलतः चित्रकूट (करबी) के निवासी थे। शांतिनिकेतन में उन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और प्रो. राम सिंह तोमर की परंपरा को आगे बढाया।

तश्ना आलमी : लखनऊ। उर्दू के जाने-माने शायर तश्ना आलमी का निधन हो गया। उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन इप्टा कार्यालय, 22 कैसरबाग में किया गया। इस अवसर पर लखनऊ के लेखकों, कवियों, कलाकारों की ओर से आलमी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। तश्ना आलमी की शोहरत अवाम के शायर के रूप में थी।

चावंड सिंह विद्रोही: उदयपुर (राजस्थान)। मेद पाट साहित्य संगम संस्था के संस्थापक और साहित्यकार चावंड सिंह विद्रोही के निधन पर नगर की साहित्यिक सामाजिक संस्था 'नव कृति' की ओर से श्रद्धांजलि सभा हुई, जिसमें जुबां क्या कहे, सगसरासौ, थपक्यां देती मावड़ी आदि पुस्तकों के रचनाकार चावंड को अध्यक्ष मधु अग्रवाल, आईना उदयपुरी आदि ने विनम्र नमन किया।

राजेंद्र मानव : जींद (हरियाणा)। यहां पिछले दिनो हिंदी साहित्य प्रेरक संस्था के कार्यालय में साहित्यकार राजेंद्र मानव के आकस्मिक निधन पर शोक प्रकट करते हुए रामफल खटकड़ ने कहा कि वह आज भले ही हमारे बीच नहीं रहे, उनकी कृतियां 'ठहरे हुए यायावर', 'बहते किनारे' हमे राह दिखाती रहेंगी। श्रद्धांजलि सभा में संस्था के वरिष्ठ उपाध्यक्ष नरेंद्र अत्री, ओमप्रकाश चौहान, बालमुकंद भोला आदि भी मौजूद रहे।

१८ अक्तूबर, पुण्यतिथि पर विशेष

कवि से लेखक बन गए राजेंद्र यादव!

राजेंद्र यादव से कई मुलाकातें हुईं, कभी 'हंस' के कार्यालय में, कभी मयूर विहार वाले उनके आवास पर। हर मुलाकात के बाद उनका एक संदेश मन में मेरे पीछे-पीछे साथ चला आता था कि वह मीडिया में बने रहना चाहते थे। इसके लिए विवादों में, चर्चाओं में बने रहना, उनके उसी उद्देश्य में काम आने वाली एक कला थी। वह चाहते थे, जो कहें, दूर तक पढ़ा-सुना जाए। यद्यपि मीडिया के बारे में उनकी राय अच्छी नहीं थी। राय तो कविता के बारे में भी अच्छी नहीं थी। भले ही उन्होंने अपने लेखन का प्रारंभ कविताओं से किया और बाद में उनको महत्त्वहीन मान कर नष्ट कर दिया। उनकी कविताएँ 'आवाज तेरी है' नाम से 1960 में ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुईं। काफी कविताएं उनके रहते अप्रकाशित रह गईं थीं। एक बड़े साहित्यकार की यह टिप्पणी उन पर भी लागू होती है कि 'जो छंद में अच्छी रचनाएं नहीं कर पाते हैं, मुक्तछंद में दौड़ने लगते हैं, जो दोनों में नहीं चल (लोकप्रिय हो) पाते, गद्य की ओर मुड़ जाते हैं।'

जयप्रकाश त्रिपाठी

वह 2009 का साल था। एक दिन वह पहले से लंबी बातचीत के लिए मन बनाकर बैठे हुए थे। जब उनसे मैंने पूछा कि 'हंस' के संपादक के रूप में आपको ऑनलाइन (सोशल) मीडिया, ब्लॉगिंग आदि का कैसा भविष्य दिखता है, वह बोले- 'इसका भविष्य तभी मजबूत होगा, जब ये एकजुट हो जाएंगे। तभी हस्तक्षेप संभव हो सकता है। अलग-अलग रहकर नहीं। पैरलल तभी बनेंगे, जब एकजुट होंगे। हजारों-लाखों ब्लॉग, पोर्टल देखना किसी एक के लिए संभव नहीं। न किसी के पास इतना समय है। लेकिन हां, पैरलल हस्तक्षेप बहुत जरूरी है, इसको कामयाब और एकजुट होना ही चाहिए। इस दिशा में कोशिश करनी चाहिए।

'इस समय मीडिया का वर्चस्व है, खास तौर से दृश्य-मीडिया का। टीवी चैनल्स बिल्कुल छाए हुए हैं। सैकड़ों चैनल हैं और सैकड़ों आ भी रहे हैं। चैनलों की भीड़ में लोगों को समझ में नहीं आएगा कि कौन-सा देखें, कौन-सा नहीं देखें। इस समय सही बात ये है, जैसाकि अखबारों में निकला, हमारे यहां ('हंस' में) भी छपा, टीवी पर दिखा कि जब पैसा लेकर खबर बनाएंगे, दिखाएंगे तो बात बिल्कुल उल्टी हो जाएगी। जिससे जितना पैसा लिया, उसको उतना कवरेज दिया। प्रिंट मीडिया में भी, दृश्य में भी। लोगों ने अपने विरोधियों की खबर दबाने के लिए पैसे दिए। एक तरह से वो चुनाव का दंगल हो गया। सवाल ये है कि ये जो अंधेरगर्दी चल रही है, ये जो धुंआधार हो रहा है, तो अब इसके खिलाफ होना क्या चाहिए? एक तो ये जानिए कि दृश्य मीडिया मुख्य रूप से मध्यम वर्ग का है। वही इसका दर्शक और श्रोता है। तो उनका मीडिया है। यदि कोई अनहोनी हो जाए, तो ये मध्यवर्गीय लोग कभी भी भीड़ बनाकर टीवी चैनलों के दफ्तरों पर नहीं जाएंगे। ये घरों में रहेंगे, गाली देते रहेंगे और सोते रहेंगे। लेकिन कहते हैं न कि बाजार मजबूर कर देता है। आप अभिशप्त हैं, चीजें खरीदने के लिए। और वो निर्लिप्त हैं बेंचने के लिए। देखिए कि मीडिया सिर्फ खबरें नहीं बेच रहा है, ये मीडिया सिर्फ मीडिया नहीं है, ये विज्ञापनों के माध्यम से कंज्यूमर्स को हजारों चीजें बेच रहा है। जो हम चाहते नहीं, जिसकी हमे जरूरत नहीं, वह भी हमे खरीदने के लिए ललचाता रहता है। ऐसे

नया कपड़ा पहनने से पहले अपने सारे कपड़े उतार कर नंगा होना पड़ेगा!

प्रसंगवश एक प्रश्न के उत्तर में राजेंद्र यादव का कहना था - 'जब उदय प्रकाश के खिलाफ लेखकों की सूची जारी की गई थी, मुझसे भी समर्थन मांगा गया था। मैं उस समय तक कुछ जानता नहीं था। मैंने उनसे पूछा था, और कहा था कि जब तक कोई बात मैं पूरी तरह न जान लूं, उस पर कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूं। मैं पहले पता करूंगा कि आखिर सही बात क्या है? जो लोग उस सूची में मेरा नाम भी शामिल करना चाहते थे, बाद में उनकी बातों की पुष्टि हो गई। देखिए, उदय प्रकाश बहुत बेजोड़ साहित्यकार हैं। यदि इस समय हिंदी कथाकारों में कोई एक नाम लेना हो, तो वह हैं उदय प्रकाश। लेकिन जरूरी नहीं है कि व्यक्तिगत रूप से भी वह वैसे ही बेजोड़ हों। वह इस समय 'आत्म-प्रताड़ना' जैसी बीमारी के शिकार हैं। उन्हें लगता है कि उनके खिलाफ सब लोग षड्यंत्र करते हैं, उन्हें सब लोग सताते हैं, उन्हें पुरस्कार नहीं देते, उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार नहीं मिला, उन्हें कोई नौकरी नहीं दे रहा, आदि-आदि। बराबर, चौबीसो घंटे उनकी यही शिकायतें रहती हैं। ये जो चीजें हैं, हमेशा आत्म-दया, आत्म-करुणा, कुंठा कि सारी दुनिया उनके खिलाफ है, उसका कारण वो ये मानते हैं कि बाकी जो हिंदी वाले लोग हैं, बहुत टुच्चे हैं, अनपढ़ लोग हैं, बेवकूफ हैं और सिर्फ वे (उदय प्रकाश) ही एक महान लेखक हैं। सिर्फ उन्होंने ही अच्छी किताबें लिखी हैं, बाकी सब उल्लू के पट्ठे हैं, उनसे जलते और उनके रास्ते की बाधा हैं।

'जब वह इस तरह सोचेंगे, इस तरह की बातें करेंगे तो क्या कहा जाए! गोरखपुर वाले प्रकरण पर एक बार मेरे पास भी उनका फोन आया। छूटते ही उन्होंने मुझसे सवाल किया कि ये सब क्या हो रहा है? मैंने कहा, हो क्या रहा है, जैसा कर रहे हो, वैसा हो रहा है। वे कहने लगे, मेरा वह पारिवारिक मामला था, मेरे भाई की स्मृति में वह कार्यक्रम हुआ था। उनकी बरसी का आयोजन था। मैं उसमें गया था। तो, मैंने उनसे पूछा कि जब वह निजी कार्यक्रम था तो सार्वजनिक तरीके से क्यों आयोजित किया गया। यदि सार्वजनिक तरीके से हुआ तो पर्सनल कैसे रहा? क्या आप जानते नहीं थे? इतने मासूम, इतने दयनीय मत बनो। मैंने उस दिन उदय प्रकाश को बहुत डांटा था। तुम्हारे भीतर एक ऐसी कुंठा है, जो लगता है कि हर आदमी तुम्हारे खिलाफ षड्यंत्र करता है। मेरा खयाल है कि तुम खुद अपना कोई रास्ता तलाश लो।

'मैं कहना नहीं चाहता, लेकिन गांव का एक बड़ा वैसा मुहावरा है कि 'सबसे सयाना कौवा, सबसे ज्यादा गू खाता है'। पक्षियों में सबसे सयाना। गंदी चीजों पर सबसे ज्यादा चोंच मारता फिरता है, हर जगह। सुना है कि अब वह अपने समस्त राजनीतिक सरोकार खत्म कर लेने की बातें भी करने लगे हैं....कि किसी राजनीतिक विचारधारा के लिए प्रतिबद्ध नहीं, कि किसी भी तरह की राजनीतिक तानाशाही के खिलाफ हैं, आदि-आदि। तो राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक तानाशाही, दोनों अलग-अलग दो बाते हैं। एक बाहर से है, दूसरी खुद की। लेखक के साथ कोई राजनीतिक तानाशाही न हो, यह एक ठीक बात है, लेकिन लेखक कहे कि मेरी कोई राजनीतिक विचारधारा नहीं है, ये अलग बात हो गई। और ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। जब वह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात करते हैं तो क्या वह उनके राजनीतिक विचारों का संकेत नहीं? क्या वह नहीं जानते कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राजनीतिक बात है, और किस तरह के लोगों की राजनीतिक विचारधारा की बात है? अगर मैं उदय प्रकाश के बारे में इन बातों को सही मानूं तो मैं उनसे एक बात कहना चाहूंगा कि कोई भी नया कपड़ा पहनने से पहले अपने सारे कपड़े उतार कर नंगा होना पड़ेगा!

में या तो आपके पास एक समानांतर या पैरलल किस्म का मीडिया हो, जो इसलिए संभव नहीं है कि ऐसे एक-एक मीडिया संस्थान स्थापित करने में सैकड़ो-सैकड़ो करोड़ की पूंजी लग रही है। वह संस्थान, चाहे प्रिंट का हो या दृश्य का। इतना कॉस्टली हो गया है कि जब तक आपके पास दो-तीन सौ करोड़ न हों, आप चैनल चलाने की बात ही नहीं सोच सकते हैं।

'अखबार तो भी सौ-पचास लाख में चला सकते हैं, लेकिन चैनल नहीं। इतनी पूंजी लगाने के बावजूद आप में क्षमता होनी चाहिए कि दो-तीन साल घाटा भी बर्दाश्त करें। ऐसी स्थिति में दो ही विकल्प बचते हैं। क्योंकि पैरलल हम चला नहीं सकते। आज मैं जो चैनल देखता हूं, जो मुझे सबसे विश्वसनीय चैनल लगता है, एनडीटीवी है। वहां भी काफी पक्षपात दिखाई देता है। हो सकता है, वह विज्ञापन के रूप में प्रायोजित खबरों का पैसा न लेते हों। आपको शायद याद होगा। दो-तीन साल पहले हमने 'हंस' का एक विशेषांक खबरिया चैनलों पर प्रकाशित किया था। उसके बाद चैनल में काम करने वाले लेखकों की कहानियों पर एक किताब निकाली थी। उन कहानियों से जो सच सामने आया, पहली बार जान पड़ा कि चैनलों के भीतर अद्भुत कहानियां हैं। चैनलों के भीतर हालात भयानक हैं..., कि कैसे एक घटना को बनाया जाता है, और उसको कवर करके उस पर हंगामा क्रिएट किया जाता है। जैसे चैनल्स के रिपोर्टर्स ने एक दूध वाले से कहा कि पहले हम तुम्हारे कपड़ों में आग लगा देंगे। इसके बाद फोटो खींचकर आग बुझा देंगे। आग लगा दी, बुझाया नहीं, उस पर फिल्म बनाने लगे और वह देखते ही देखते जिंदा जल गया। मर गया। ऐसा पहले अमेरिकी मीडिया कर चुका है।

'पंद्रह-बीस साल पहले वहां का एक अखबार व्यवसायी था। बाद में उसका बेटा उसके साथ काम करने लगा। अखबार निकालने

लगा। उसने नए धंधे का नया तोड़ निकाला। सत्य कथाओं का प्रकाशन। उसका बचपन का एक दोस्त था। उसने दोस्त से कांटेक्ट किया कि वह उसे सच्ची-ताजी अपराध कथाएं बताए, वह उन्हें ही छापेगा। सच्ची घटनाएं छपने लगीं। अखबार की मांग आसमान छूने लगी। फिर उससे कहा कि एक्सक्लूसिव खबरों के लिए तुम अपराध आयोजित करो। हम उनकी फोटो लेंगे, अब सचित्र छापा करेंगे। अब हुआ ये कि वे घटनाएं सबसे पहले उसके अखबार में छपने लगीं। धीरे-धीरे वह इतना पॉवरफुल हो गया कि उसकी तूती बोलने लगी। घटनाएं भी खूब होने लगीं। जो भी घटना होती, सबसे पहले उसके ही अखबार में छप जाती। उसी दौरान वहां किसी राष्ट्राध्यक्ष का प्रोग्राम बना। उसकी एक्सक्लूलिव खबर बनाने के लिए उन्होंने उसकी हत्या की साजिश रची।

'होता यह था कि उधर घटना होती, इधर पहले से खबर बना ली जाती। राष्ट्राध्यक्ष की हत्या की साजिश सफल नहीं हो सकी लेकिन मर्डर की पहले से तैयार खबर अखबार में छप गई। उसके बाद वह अखबार ऐसा ध्वस्त हुआ कि फिर कभी न उठ सका। जो अपने को सर्वशक्तिमान मान लेता है, किसी समय वह भी इसी तरह ध्वस्त होता है। यही हाल आज भारतीय मीडिया का होता जा रहा है। इनकी आपसी प्रतिद्वंद्विता से सूचनाओं को लेकर जिस तरह की मनमानी बढ़ती जा रही है, यही उनके विनाश का कारण भी बनेगी। ये मीडिया बाहरी नहीं, अपने आंतरिक कारणों से कभी बेमौत मरेगा। क्योंकि यह इतना बलवान हो चुका है कि किसी बाहरी मार से नहीं मरेगा। ये अपने ही अंतरविरोधों, आपसी 'युद्ध-प्रतिद्वंद्विता' या अपने बोझ से मरेगा। जहां तक इस मीडिया के जनता के साथ खड़े होने की बात है, यह किसी आंदोलन को खड़ा कर सकता है, लेकिन उसके साथ खड़ा नहीं हो सकता। यही इसके बाजार और अस्तित्व का तकाजा है।'

उस दिन यादवजी से जब मैंने पूछा कि आपने कहीं कहा है, विचारधारा नृशंस बनाती है, कैसे? तो उनका कहना था कि 'देखिए, उस बातचीत के दौरान मुझे ऐसा लगा था। अभी भी लगता है। लड़ने के लिए, युद्ध के लिए, और उसके बाद उन विचारों के हिसाब से जो शासन प्रणाली बनती है, तो वह उस राज्य के माध्यम से अपने विचारों को लोगों पर लागू करने की अवांछित कोशिशें ज्यादा करती है। जिन विचारों की दृढ़ता के साथ आप कोई संघर्ष करते हैं, लड़ते हैं, युद्ध करते हैं, युद्ध जीत जाने के बाद जब आप शासन में आएंगे, तो उसी एक-पक्षीय वैचारिक नृशंसता के साथ अपनी शासन प्रणाली चलाना चाहेंगे। शासन में आ जाने के बाद वह उसी मजबूती से अपने विचारों को लागू करना चाहेंगे। जहां-जहां इस्लामी शासन प्रणाली आई, वहां भी ऐसा हुआ। उनकी नजर में, उनके विचारों के हिसाब से जो काफिर थे, दमन का शिकार हुए। लेकिन हमारे यहां बात दूसरी है। जब संग्राम होता है तो उसके नायक दूसरे होते हैं, सत्ता में आ जाने के बाद दूसरे। जैसे महात्मा गांधी। जब स्वतंत्रता सेनानी गांधीवादी तरीके से संग्राम जीत कर राजसत्ता में आए तो गांधी चले गए। हमने जो प्रजातंत्र की शासन प्रणाली अपनाई, वो शब्दशः वैसी नहीं थी, जैसा गांधी जी चाहते, कहते थे। गांधी जी व्यक्ति-केंद्रित थे। वह उस समय की पैदाइश थे, जब सारी चीजें व्यक्ति-केंद्रित होती थीं। अहिंसा तो सिर्फ कहने को उनका राजनीतिक अस्त्र था।'

जब उनसे पूछा गया कि प्रेमचंद्र की कहानियों में गांव ही गांव हैं, 'हंस' से गांव नदारद क्यों रहता है? इस सवाल ने उन्हे किंचित विचलित किया, फिर सहज होते हुए बोले - 'बात सही है। चूंकि मैं गांव का सिर्फ रहा भर हूं, लेकिन सचेत जीवन शहरी रहा है। सीधे संपर्क नहीं रहा। मेरे संपादक होने के नाते 'हंस' के साथ एक बात यह भी हो सकती है। हालांकि ऐसी कोई बात नहीं कि अपने समय के गांव को रचनाकार के रूप में मैंने महसूस नहीं किया है। पैंतालीस सालों से शहर में रह रहा हूं। हंस के साथ सबसे बड़ा कंट्रीब्यूशन भी शहरी मध्यवर्ग का है। अब सवाल उठता है कि हम गांव के बारे में लिखें या गांव के लोग लिखें। यदि गांव से कोई गांव के बारे में लिखे तो बहुत ही अच्छा, लेकिन ऐसा हो कहां रहा है? ऐसा संभव भी नहीं लगता है। प्रेमचंद ने होरी के बारे में लिखा। किसी होरी को पता ही नहीं कि उसके बारे में भी किसी ने कुछ लिखा है। ये तो शहरों में बैठकर हम लोग न उसकी करुणा और दुर्दशा की फिलॉस्पी गढ़ रहे हैं।

'आज गांवों से कुछ लोग लिख रहे हैं। वे कौन-से लोग हैं? वे, वह लोग हैं, जो गांव में फंसे हैं, किसी मजबूरी या अन्य कारणों से। या कहिए कि जिन्हें शहरों में टिकने की सुविधा नहीं मिल पाई, गांव लौट गए और वहीं रह गए हैं। मजबूरी में वही गांव में रह कर गांव के बारे में लिख रहे हैं। और ये वे लोग नहीं हैं, जो गांवों में रम गए हैं। फिर भी, हमारे यहां 'हंस' में आज भी सत्तर फीसदी कहानियां गांव पर होती हैं। मैं अपने को प्रेमचंद, टॉलस्टॉय और गोर्की की परंपरा में मानता हूं। तो मुझे तो रूसी समाज पर लिखना चाहिए। क्यों? या मेरे समय में प्रेमचंद का गांव तो नहीं? मेरे लिए अपने समय के मानवीय संकट ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, वह गांव के हों या शहर के। प्रेमचंद ने गांव पर लिखा। यहां प्रेमचंद के गांव से ज्यादा बड़ी और महत्वपूर्ण होती है 'प्रेमचंद की चिंता' गांव के बारे में। यशपाल ने गांव पर नहीं लिखा, लेकिन मैं उन्हें प्रेमचंद की परंपरा का मानता हूं, क्योंकि उनकी रचना में जो मानवीय संघर्ष, मानवीय स्थितियां परिलक्षित होती हैं, हमे सीधे उसी गांव के सरोकारों तक ले जाती हैं। तो 'हंस' के साथ गांव की बात जोड़कर एक लेखक के विषय को लेकर हम कंफ्यूज कर रहे हैं। आज मेरा समाज वो नहीं है, जो प्रेमचंद का था। मैंने 'प्रेमचंद की विरासत' के नाम से एक किताब भी लिखी है। आज आवागमन दोनों तरफ से है। गांव शहर में बढ़ता जा रहा है, शहर गांव में घुसता जा रहा है।'

राजेंद्र यादव की दो कविताएं

कविता के बारे में राजेंद्र यादव का कहना था कि देश की आजादी के बाद का 60 साल का समय कविता से साहित्य का क्रमशः मुक्त होने का समय रहा है। गद्य का विकास कविता के चंगुल से मुक्त होने के साथ होता रहा तो वहीं जीवित रहने के लिए कविता को या तो गद्यात्मक होना पड़ा या फिर वो पश्चिम का सीधा-साधा अनुवाद हो गई। समय के साथ-साथ कुछ चीजें मुर्झा जाती हैं, एक ओर सरकती चली जाती हैं और कुछ हैं जो मुख्यधारा में आ जाती हैं। आज से 50 साल पहले या फिर 20-25 साल पहले किसी भी साहित्यिक बहस में या खंडन-मंडन में या प्रतिवादन में अक्सर कविता का जिक्र हुआ करता था, उसे 'कोट' किया जाता था, जबकि अब सारे विश्व में कविता इन सबसे अलग हो चुकी है। हिंदी में आज जितने वैचारिक विमर्श होते हैं, उनमें क्या कहीं कविता है?... क्या तुलसी, कबीर या फिर किसी और ने भी हिंदी साहित्य को समझने के लिए कोई अवधारणा विकसित की?

नयी पीढ़ी का गीत

और दो...और दो...
देखो, हमें कभी कुछ नहीं मिला...
हमारा असन्तोष, हमारा गिला
हमारे सपने सब
समय ने कुचल दिये...
''भगवान उसे समझेगा!''
हम उन बौनों के बेटे हैं
जिन्होंने बस,
तन ही दिया था हमें
और फिर चल बसे
अध-नंगे, भूखे हम
तुम्हारे मुहताज हैं:
अवसर दो,
अर्थ दो,
आसन दो,
क्षमा दो,-''हमने तुम्हें बुरा कहा''
आत्मा दो,
दृष्टि दो,
दर्शन दो,
हमारे पास कुछ नहीं
और दो...और दो...

अक्षर

हम सब अक्षर हैं
अक्षर हरे कागज पर हों या सफेद पर
खुरदरे में हो या चिकने में
टोपी पहने हों या नंगे सिर
अँग्रेज हों या हब्शी
उन्हें लिखने वाला कलम पार्कर हो या नरसल
लिखने वाली उँगलियों में क्यूटैक्स लगा हो या मेंहदी
अक्षर, अक्षर ही है
शब्द वह नहीं है
अमर होते हुए भी अपने आप में वह सूना है...
अक्षर अर्थ वहन करने का एक प्रतीक है, माध्यम है
अक्षर अक्षर का ढेर, टाइप-केस में भरा सीसा मात्र है
शब्द बनाता है अक्षर-अक्षर का सम्बन्ध
वही देता है उसे गौरव, गरिमा और गाम्भीर्य
क्योंकि शब्द ब्रह्म है
और सभी मिलकर एक सामाजिक-सत्य को
अभिव्यक्ति देते हैं
सत्य जड़ नहीं, चेतन है।
सामाजिक सत्य एक गतिमान नदी है
वह अपनी बाढ़ में कभी हमें बहा देती है, बिखरा देती है।
कभी नदी बह जाती है
तो घोंघे की तरह हम किनारों से लगे झूलते रहते हैं।
इधर-उधर हाथ-पाँव मारते हैं...
लेकिन फिर मिलते हैं
शब्द बनते हैं-वाक्य बनते हैं
और फिर नये सामाजिक सत्य को वाणी देते हैं
क्योंकि करते हम नहीं हैं
हम अक्षर जो हैं
शब्द बनकर सत्य को समोना हमारी सार्थकता है
वाक्य बनना हमारी सफलता!
हमें पढ़ो,
हमारा एक व्याकरण है।

बाल-कविताओं के जादूगर बालस्वरूप राही

आजादी के बाद जिन साहित्यकारों ने अत्यंत लोकप्रिय बाल-कविताओं का सृजन सम्भव है, उनमें बालस्वरूप राही का नाम ऊपर की पंक्ति में आता है। सूर्यभानु गुप्त, शेरजंग गर्ग, दामोदर अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, योगेन्द्र कुमार लल्ला, श्रीप्रसाद आदि भी हिन्दी की बाल-कविता को नई बुलंदियाँ दे चुके हैं, लेकिन राही जी की बाल-कविताएं अपनी बुनावट में पुरानेपन का बड़ी सहजता से अतिक्रमण करती हैं।

दिविक रमेश

हिंदी के शीर्ष कवि बालस्वरूप राही से पहले भी 'चंदामामा' पर बहुत अच्छी-अच्छी बाल-कविताएं लिखी गई हैं लेकिन उनकी 'चंदा मामा' कविता पहले की रचनाओं के पुरानेपन का विश्वसनीय ढंग से अतिक्रमण करती है। इसीलिए उनकी वह बाल-कविता आज तक लोकप्रिय भी है। यह एक गीत, न केवल बालस्वरूप राही की बाल-कविताओं में मील का पत्थर है बल्कि हिन्दी बाल-कविता को भी उनकी अप्रतिम भेंट है। एक वैज्ञानिक समझ किस प्रकार रचना में पूरी तरह रचा-बसा कर पेश की जा सकती है कि वह एक कलात्मक अनुभव के आनन्द से लहलहा उठे, इसका नमूना है यह कविता। हमारे यहाँ विज्ञान और आधुनिकता का मात्र अलाप करते रहने वाले इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं -

चंदा मामा, कहो तुम्हारी शान पुरानी कहाँ गई,
कात रही थी बैठी चरखा, बुढ़िया नानी कहाँ गई?
सूरज से रोशनी चुराकर चाहे जितनी भी लाओ,
हमें तुम्हारी चाल पता है, अब मत हमको बहकाओ।
है उधार की चमक-दमक, यह नकली शान निराली है,
समझ गए हम चंदा मामा, रूप तुम्हारा जाली है।

बालस्वरूप राही के यहाँ बाल-कविता अनुभव के और सुदृढ़तम शैली के धरातल पर भी विविधता से सम्पन्न है। और इसका कारण उनकी सहजता और बेबाकी है। उन्होंने शिशु गीत भी लिखे हैं और ऐसी कविताएँ भी, जिन्हें किशोर अपनी कह सकते हैं। पूरी मस्ती के लेखक हैं बालस्वरूप राही। किस्सा याद आता है। किसी समय में मैंने अपनी एक कविता बाँची थी - 'गुलाम देश का मजदूर गीत'। उस समय वहां बालस्वरूप राही उपस्थित थे। कविता उन्हें बहुत पसंद आई। कहा- 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपने के लिए दे दो। कविता दे दी। कुछ दिनों बाद उनसे मिलना हुआ तो उन्होंने बताया कि सम्पादक यानी स्व. मनोहर श्याम जोशी को कविता पसन्द तो है पर .....। वे मुझे सम्पादक के कमरे में ले गए। जोशी जी ने कहा कि इस कविता का शीर्षक बदल दीजिए, तभी साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हो सकती है। मैं सहमत नहीं हुआ। हम खड़े-खड़े ही बाहर निकल आए। मेरे निर्णय का राही जी ने स्वागत किया। बाद में वह कविता ज्ञानरंजन ने 'पहल' में प्रकाशित की।

राही जी की कविताएँ 'दादी अम्मा मुझे बताओ', 'हम जब होंगे बड़े', 'हम सबसे आगे निकलेंगे', 'बंद कटोरी मीठा जल' और 'गाल बने गुब्बारे' पुस्तकों में विशेष रूप से पढ़ सकते हैं। वह आज भी सक्रिय हैं, और यह सुखद है। वह अपनी बाल कविताओं में प्रायः एक साथ सहज भी, गम्भीर भी नजर आते हैं, जो आज के बालक को विश्वास में लेकर उसे नई सोच, नई समझ और नई दृष्टि से सम्पन्न देखना चाहते हैं, जो आगे चलकर एक योग्य इन्सान सिद्ध हो सके। यूँ उनकी कुछ कविताओं में हास्य भी है और मजा भी। देशप्रेम की सीधी भावनात्मक कविताएँ भी उन्होंने रची हैं और ऐसी तुलनात्मक कविताएँ भी जिसमें नया-पुराना एक साथ उजागर हो सका है और ठीक नए को सहज ही समर्थन भी मिला है। हिन्दी में ऐसी तुलनात्मक कविताएँ दुर्लभ हैं।

उनके यहाँ परी, पेड़, चिड़िया, जानवर, कीट, चाँद, सूरज, बादल, आकाश, गंगा आदि भी हैं तो बच्चों की शरारतें, उनका नटखटपन और उनकी हरकतें भी हैं। उनके यहाँ नानी, माँ, पिता आदि संबंधों की खुशबू भी है तो इंडिया गेट, कुतुबमीनार आदि इमारतों एवं लाल बहादुर शास्त्री, न्यूटन आदि महापुरुषों की भव्यता भी। उनके यहाँ होली-दिवाली भी है, तो गुब्बारे और जोकर भी। उनके यहाँ जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता है, तो जानकारी भी। उनके यहाँ रचनात्मकता भी है तो संवाद शैली भी। कहीं कहीं तो उनकी शब्द-सजगता चौंकाने की हद तक आनन्द देती है, तो कहीं ध्वन्यात्मक प्रयोगों की रूनझुन महसूस करते ही बनती है। उनकी बाल-कविताओं पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

उनकी एक कविता है 'कार'। इसमें कोरी तुलना नहीं बल्कि बड़ी ही सूझ के साथ प्रदूषण और अनुशासन की समझ भी पिरो दी गई है -

पापा जी की कार बड़ी है
नन्हीं-मुन्नी मेरी कार।
टाँय टाँय फिस उनकी गाड़ी,
मेरी कार धमाकेदार।
उनकी कार धुआँ फैलाती
एक रोज होगा चालान,
मेरी कार साफ-सुथरी है
सब करते इसका गुणगान।

यहीं यह भी पता चलता है कि आज का बालक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी चाहता है। चाहता तो हर समय का बच्चा होगा लेकिन आज आजाद बच्चों को उसे व्यक्त करने में सक्षम भी किया जा रहा है। इस सत्य का अनुभव राही जी की एक कविता मेंहदी में बखूबी मिलता है --

सादिक जी पहुँचे भोपाल
लाए मेंहदी किया कमाल।
पापा ने रंग डाले बाल,
मेंहदी निकली बेहद लाल
बुरा हुआ पापा का हाल,
महंगा पड़ा मुफ्त का माल।
अगर जरा बैठे हों दूर
पापा लगते हैं लंगूर।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पुण्यतिथि 15 अक्तूबर पर विशेष

महाप्राण और महादेवी

'महाप्राण' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की साहित्य साधना हिन्दी कविता के छायावादी युग के एक प्रमुख स्तंभ के रूप में उनसे हमारा परिचय कराती है लेकिन संघर्षशील उतार-चढ़ावों से गुजरा उनका व्यावहारिक जीवन अलग तरह के अनुभवों से सामना कराता है। मस्तमौला, यायावर तो थे ही, फकीरी में भी दानबहादुरी ऐसी कि जेब का आखिरी आना-पाई तक मुफलिसों पर लुटा आते थे। नया रजाई-गद्दा रेलवे स्टेशन के भिखारियों को दान कर खुद थरथर जाड़ में फटी रजाई तानकर सो जाते थे। जीवन की ऐसी विसंगतियां-उलटबासियां शायद ही किसी अन्य महान कवि-साहित्यकार की सुनने-पढ़ने को मिलें, जैसी की महाप्राण के बारे में। सुख-दुख की ऐसी कई अनकही-अलिखित-अपठित गाथाएं उनके जीवन से जुड़ी हैं। जग जानता है, कवयित्री महादेवी वर्मा से निराला जी का भाई-बहन जैसा रिश्ता था। एक बार वह रक्षा-बंधन के दिन सुबह-सुबह महादेवी जी के घर पहुँच गए। रिक्शा रुका। दरवाजे के बाहर से ही चिल्लाए- 'दीदी, जरा बारह रुपए तो लेकर आना।' बारह रुपए लेकर महादेवी जी बाहर निकलीं, पूछा- 'यह तो बताओ भैया, यह सुबह-सुबह बारह रुपए का क्या करोगे?' निरालाजी बोले- 'ये दुई रुपया तो इस रिक्शा वाले को। अब बचे दस रुपए। ये तुम्हारे

लिए। तुम से राखी बँधवाऊंगा तो देने के लिए पैसे कहां से आएंगे!'

उत्तर प्रदेश के शीर्ष शिक्षाधिकारी रहे साहित्यकार श्रीनारायण चतुवेर्दी के ठिकाने पर वह अक्सर लखनऊ पहुंच जाया करते थे। और वहां कब तक रहेंगे, कब अचानक कहीं और चले जाएंगे, कोई तय नहीं होता था। श्रीनारायण चुतवेर्दी के साथ निरालाजी के कई प्रसंग जुड़े हैं। लोग चतुवेर्दीजी को सम्मान से 'भैयाजी' कहते थे। वह कवि-साहित्यकारों को मंच दिलाने से लेकर उनकी रचनाओं के प्रकाशन, आतिथ्य, निजी आर्थिक जरूरतें पूरी कराने तक में हर वक्त तत्पर रहते थे।

वह सर्दियों का दिन था। कवि-सम्मेलन खत्म होने के बाद एक बार भैयाजी बनारसी, श्यामनारायण पांडेय, चोंच बनारसी समेत चार-पांच कवि सुबह-सुबह चतुवेर्दीजी के आवास पर पहुंचे। सीढ़ियों से सीधे उनके कमरे में पहुंचते ही एक स्वर में पूछ बैठे - 'भैयाजी नीचे के खाली कमरे में फर्श पर फटी रजाई ओढ़े कौन सो रहा है? सिर तो रजाई में लिपटा है और पायताने की फटी रजाई से दोनों पांव झांक रहे हैं।' चतुवेर्दीजी ने ठहाका लगाया - 'अरे और कौन होगा! वही महापुरुष हैं।... निरालाजी। ... क्या करें जो भी रजाई-बिछौना देता हूं, रेलवे स्टेशन के भिखारियों को बांट आते हैं। अभी लंदन से लौटकर दो महंगी रजाइयां लाया था। उनमें एक उनके लिए खरीदी थी, दे दिया। पिछले दिनो पहले एक रजाई और गद्दा दान कर आए। दूसरी अपनी दी, तो उसे भी बांट आए। फटी रजाई घर में पड़ी थी। दे दिया कि लो, ओढ़ो। रोज-रोज इतनी रजाइयां कहां से लाऊं कि वो दान करते फिरें, मैं इंतजाम करता रहूं।'

इसके बाद छत की रेलिंग पर पहुंचकर मुस्कराते हुए चतुवेर्दी जी ने मनोविनोद के लिए इतने जोर से नीचे किसी व्यक्ति को कवियों के नाश्ते के लिए जलेबी लाने को कहा, ताकि आवाज निरालाजी के भी कानों तक पहुंच जाए। जलेबी आ गई। निरालाजी को किसी ने नाश्ते के लिए बुलाया नहीं। गुस्से में फटी रजाई ओढ़े वह स्वयं धड़धड़ाते कमरे से बाहर निकले और मुंह उठाकर चीखे - 'मुझे नहीं खानी आपकी जलेबी।' और तेजी से जलेबी खाने रेलवे स्टेशन निकल गए। इसके बाद ऊपर जोर का ठहाका गूंजा। लौटे तो वह फटी रजाई भी दान कर आए थे।

निरालाजी चाहे कितने भी गुस्से में हों, चतुवेर्दीजी की कदापि, कभी तनिक अवज्ञा नहीं करते थे। एक बार क्या हुआ कि, कवि-सम्मेलन में संचालक ने सरस्वती वंदना (वर दे वीणा वादिनी..) के लिए निरालाजी का नाम माइक से पुकारा। वह मंच की बजाए, गुस्से से लाल-पीले श्रोताओं के बीच जा बैठे थे। मंच पर हारमोनियम भी रखा था। पहले से तय था, सरस्वती वंदना का सस्वर पाठ निरालाजी को ही करना है, लेकिन उन्हें बताया नहीं गया था। निरालाजी बैठे-बैठे जोर से चीखे- 'मैं नहीं करूंगा सरस्वती वंदना।' इसके बाद एक-एक कर मंचासीन दो-तीन महाकवियों ने उनसे अनुनय-विनय किया। निरालाजी टस-से-मस नहीं। मंच पर श्रीनारायण चतुवेर्दी भी थे। उन्होंने संचालक से कहा - 'मंच पर आएंगे कैसे नहीं, अभी लो, देखो, उन्हें कैसे बुलाता हूं मैं।' वह निरालाजी को मनाने की कला जानते थे। उन्होंने माइक से घोषणा की - 'निरालाजी आज कविता पाठ नहीं करेंगे। उनकी तबीयत ठीक नहीं है।' तत्क्षण निरालाजी चीखे और उठ खड़े हुए - 'आपको कैसे मालूम, मेरी तबीयत खराब है! सुनाऊंगा। जरूर सुनाऊंगा।' और फिर तो हारमोनियम पर देर तक उनके स्वर गूंजते रहे।

फि राक गोरखपुरी और निराला जी की दोस्ती के भी कई किस्से हैं। रमेश चंद्र द्विवेदी लिखते हैं- 'फि राक और निराला में दोस्ती तो थी, लेकिन जम कर लड़ाई भी होती थी। वह नौकर से निराला के लिए रिक्शा मंगवाते और गेट तक उन्हें छोड़ने जाते। वो रिक्शेवाले को पैसा पहले ही दे दिया करते थे। वह खुद ही निराला से कविता सुनाने के लिए ज़िद करते और जब निरालाजी कविता पढ़ना बंद कर देते तो वह उनकी कविता में खामियां बयान करते। निरालाजी पहले तो सुनते और फिर जब उनसे न रहा जाता तो बरस पड़ते और फिर तो छतें हिलने लगतीं। कभी-कभी निरालाजी अंग्रेजी में लड़ाई लड़ते मगर फि राक उनका जवाब हिंदी में देते थे। जब भी निराला आते नौकर को भेज कर एक बोतल महुए की शराब मंगाई जाती। निरालाजी के लिए कोरमा, कबाब, भुना हुआ गोश्त, पुलाव, मिठाइयाँ सब कुछ रहता। फि राक अंदर आकर बार-बार चिल्ला जाते- खबरदार, कुछ कम न पड़ने पाए।'

उन दिनो अज्ञेय जी का निराला जी के यहां आना-जाना था। अज्ञेय जी पहली बार जब निराला जी से मिलने पहुंचे, 'उग्र' जी भी विराजमान थे। आमने-सामने दोनो के बीच दो अधभरे गिलास और हाथों में अधजले सिगरेट। उग्रजी ने निराला जी से परिचय दिया - 'यह अज्ञेय है।' निरालाजी ने पहले तो सिर से पैर तक उन्हे देखा, नमस्कार के जवाब में बोले- 'बैठो।' अज्ञेय जी बैठने ही जा रहे थे, बोले- 'जरा सीधे खड़े हो जाओ।' अज्ञेय जी सीधे खड़े हो गए। निरालाजी भी खड़े। दोबारा उन पर सिर से पैर तक आंखें दौड़ाने के बाद बैठते हुए उग्रजी से बोले- 'ठीक है। डौल तो रामबिलास जैसा ही है।' अज्ञेयजी लिखते हैं- निराला का पागलपन 'जीनियस का पागलपन' था, इसीलिए वह सहज ही प्रकृतावस्था में लौट आते थे।' एक बार वह शिवमंगल सिंह सुमन के साथ निरालाजी से मिलने पहुंचे। सुमनजी पूछ बैठे- 'निरालाजी, आजकल आप क्या लिख रहे हैं?' निराला ने कहा- 'निराला? कौन निराला? निराला तो मर गया। निराला इज डेड।' इसी तरह एक बार कविसम्मेलन में पंडित श्याम नारायण पांडेय 'हल्दीघाटी' की कविता सुना रहे थे- 'रण बीच चौकड़ी भर-भर कर चेतक बन गया निराला था..'। मंच से निरालाजी चौंके- 'क्या कहा..... निराला था?' (संकलन : जयप्रकाश त्रिपाठी)

खेतों में रुगबुग-रुगबुग फूल उठे सरसों

कवि-कथाकार लक्ष्मीनारायण पयोधि हमारे समय में मझोली पीढ़ी के उन गंभीर सर्जकों में से एक हैं, जिन्होंने विभिन्न विधाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। पयोधि मौलिक कल्पना शक्ति के स्वामी हैं। इनकी रचना-प्रक्रिया में हर चीज समग्रता में आती है। आलोचक डा. धनंजय वर्मा के अनुसार पयोधि का काव्य यकसानियत के इस दौर में अलग 'फिंगर प्रिंट' वाला है।

लक्ष्मीनारायण पयोधि के कविता संग्रह 'अंत में बची कविता' की चर्चा में आलोचक डा. धनंजय वर्मा लिखते हैं - 'कविता मनुष्य को सृजित करने के क्रम में बुनियादी रूप से बदलना चाहती है। यह महज संयोग नहीं है कि इस संग्रह की कविताओं में ऋषि, मंत्र, आरण्यक आदि शब्द आते हैं। कोई भी शब्द अपने आप में संपूर्ण नहीं होता है। उसके पीछे एक चेतना विद्यमान होती है। पयोधि की कविताओं में चेतना का विस्फोट है। 'शब्द को कामधेनु' बना कर उसके थनों से इच्छित अर्थ-ध्वनियाँ दुह लेने की कामना भी संयोग मात्र नहीं, बल्कि यह एक साधक की सृजन-सामर्थ्य है।' डा. कुसुमलता केडिया लिखती हैं - 'लक्ष्मीनारायण पयोधि का काव्य इस वीभत्स के साधना-समय में मंत्र-सृष्टा का नादवीर्य है। उनकी प्रतिभा उम्र की सीमाओं से परे है। शब्द को सिद्ध कर उसे मंत्र बनाना या शब्द से जीवन रचकर उसके नादवीर्य से दिक्काल को गुँजा देने की कामना करना कविता में बहुत सहज घटना नहीं है।'

लक्ष्मीनारायण पयोधि का जन्म एक अत्यंत निर्धन तेलुगूभाषी कृषक परिवार में हुआ। माता-पिता आज भी तेलुगू के अलावा कोई दूसरी भाषा नहीं बोल सकते हैं। अविभाजित मध्यप्रदेश के बस्तर अंचल के सीमावर्ती ग्राम भोपालपटनम् में पले-बढ़े पयोधि ने वहाँ के गोंडी परवेश में रहते हुए जनजातीय संस्कृति और भाषाओं को करीब से देखा। वहीं से उस संस्कृति की विशेषताओं के प्रति

आकर्षण और जिज्ञासा-भाव विकसित हुए, जो बाद में उनके साहित्य और जनजातीय संस्कृति एवं भाषा सम्बन्धी शोध की आधारभूमि बने। पयोधि के प्रथम प्रकाशित काव्य-पुस्तक 'सोमारू' (1992) की संपूर्ण काव्यवस्तु जनजातीय जीवन-संस्कृति पर केन्द्रित है और इसी विशेषता के कारण उसे तब हिन्दी कविता में नये प्रयोग के रूप में रेखांकित किया गया था। उसका मराठी और अंगरेजी में अनुवाद भी हुआ।

रुगबुग-रुगबुग

गीले छैनों1 में बजबजाते कीड़े
डूमर2 के पके फल को खोलने पर जैसे
फिर भी रोज की तरह
बीन रही हूँ कि छूटे नहीं आदत
कि टूटे नहीं नियम बीनने का
वहाँ बीनने होंगे महू3 और सपने भी
खेतों में रुगबुग-रुगबुग फूल उठे सरसों
और विहँसने लगे गेंदा झपझप-झपझप
संकेत से बुलाने लगे
लालभाजी के सफेद फूल
तोड़ भी नहीं पाऊँगी भाजी
कि लेने मुझे आ जायेंगे ससुर या जेठ

डरती हूँ लेकिन मैं जाने से
साथ ससुर या जेठ के
उठ गया घूँघट कहीं रस्ते में
तो लगा देगी पंचायत मयार्दा भंग का आक्षेप
और भोगना पड़ेगा दण्ड बिरादरी से निष्कासन का
लिटिया4, जा कह दे मेरे प्रियतम से
कि न भेजे मुझे लेने ससुर या जेठ को
खुद आये और ले जाये
जैसे ले गये थे ब्याहकर
ले जाये साथ अपने
कि रास्ते में बरगद की छाँव में झूल सकें
झूला गाते हुए बिरहा5

लिटिया, साथ तू भी चलना
कि बरगद की सबसे ऊँची फुनगी से
तोड़कर दे सके तू मीठे फल
कि मिलकर खायेंगे
और उत्सव मनायेंगे
चल, अभी तो चलें घर
चावल के आटे से बनायें पेज6
और करें इंतजार प्रियतम का
रुगबुग-रुगबुग फूलने लगे सरसों
और गेंदा भी विहँस उठे झपझप

(1 गोबर के कंडे 2 गूलर 3 महुआ 4 लीटी नाम का पक्षी 5 गोंड जनजाति की एक गायनशैली 6 एक पेय)

करौंदे की बाड़ी में

छुटपन से लीपती रही घर-आँगन
सिखाया माँ ने कि घोल में कितना हो अनुपात
गोबर, छुई1 और पानी का
कि होता जीवन में जैसे
दुख, सुख और आँसुओं का मिश्रण
अनुपात हो सही-सही
कि घोल से खिल उठे घर की दीवारें
फर्श और आँगन
कि उकेरे जा सकें चीन्हा2
बना सकें प्रकृति को घर का हिस्सा

छुटपन से चुनती रही बाड़ी में भाजियाँ
कि जैसे आँखों में नये उगे सपने
हर सपने का अलग स्वाद, जैसे हर भाजी का
गा रही मामा की बेटी...
चल रहा बिरहा3 का आलाप...
'करौंदे4 की बाड़ी में चुभ गया काँटा
और गाँव भर में बजने लगे बाजे
तू आजा, डिण्डोरी5 के हाट मनमीत,
खरीदेंगे मनपसंद नया लुगड़ा6
और सिलवायेंगे सुंदर पोलका7'

कैसे जाये हाट मनमीत
गाँठ में नहीं कौड़ी एक
रात का बासी खाया, पेज8 का तूम्बा9 खाली
प्यार तो बेशुमार, मगर दिल में नहीं उमंग जरा
होंठों पर आये हँसी कैसे
गा रही मामा की बेटी10--
'करौंदे की बाड़ी में चुभ गया काँटा
और गाँव भर में बज रहे बाजे'
चल रहा बिरहा का आलाप....

(1 सफेद मिट्टी 2 भित्ति चित्र 3 गोंड जनजाति की एक पारंपरिक गायन शैली 4 एक गाछ 5 मध्यप्रदेश का एक नगर 6 साड़ी 7 ब्लाउज 8 अनाज से तैयार पेय 9 सूखी लौकी का पात्र, जिसमें पेय पदार्थ रखे जाते हैं 10 द्रविड़ संस्कृति में मामा की बेटी से विवाह का चलन है)

एक बह्र पर एक ग़ज़ल

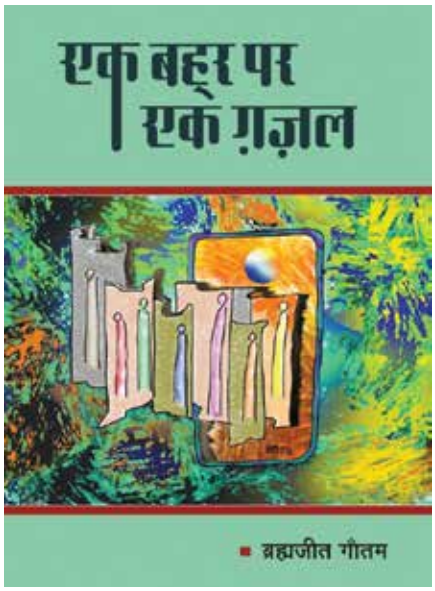

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम-विरचित ग़ज़ल-कृति 'एक बह्र पर एक ग़ज़ल' में समाहित 65 ग़ज़लों का रसास्वादन किया। ये सभी ग़ज़लें अरकान के वज्न पर हैं। उनमें मतला, मकता, काफिया तथा रदीफ का सम्यक निर्वाह है। उर्दू-फारसी का सलीका लेकर डॉ. गौतम ने इस कृति की ग़ज़लों में हिन्दी की सुगंध घोली है। वास्तव में छंद-बद्ध कविता अपनी विशिष्ट लय में उच्चरित होती है। लय का आधार लघु-गुरु क्रम ही होता है। कविता में गण-विधान (मात्रिक तथा वर्णिक) लघु-गुरु क्रम को नियोजित करता है। उर्दू-फारसी में इन्हें अरकान कहते हैं। अरकान और गणों में अधिकांश साम्य है, किन्तु अरकान में दो मिश्रित लघु, जैसे 'यह', 'वह' आदि गुरु माने जाते हैं, जबकि 'न कि' जैसे अपमिश्रित लघु दो लघु ही रहेंगे।

इन विन्दुओं को मद्दे नजर रखते हुए कृतिकार ने अपने अतिरिक्त कौशल द्वारा रुक्न और गण में स्पष्ट साम्य स्थापित किया है और इसी आधार पर उर्दू बह्र के रुक्न और हिन्दी के गण में साम्य या सादृश्य बताते हुए विशिष्ट बह्र और छंद दोनों स्पष्ट किये हैं। कृति की सभी ग़ज़लों में इस प्रकार का हिन्दीकरण श्लाघनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है। नमूने के तौर पर कृति की एक बहुत छोटी बह्र वाली ग़ज़ल के अश्आर देखें, जो उर्दू में बह्रे मुतकारिब मुरब्बा सालिम (फऊलुन-फऊलुन) तथा हिन्दी में सोमराजी वर्णवृत्त (दो यगण यति 2-4) में निबद्ध है -

वफाएँ हमारी / अदाएँ तुम्हारी
ये नजरें करारी / हैं पैनी कटारी

इस प्रकार इस कृति की ग़ज़लों में कृतिकार ने हिंदी छंदों को चिह्नित कर एक अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया है। आलोच्य कृति में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर 65 बह्रें हैं। इनमें सालिम तथा मुजाहिफ दोनों प्रकार की बह्रें हैं। सालिम बह्र में केवल सालिम रुक्न होते हैं, जबकि मुजाहिफ बह्रों में सालिम रुक्नों और जिहाफों का मिश्रण होता है। कृतिकार ने अपनी ग़ज़लों में इन दोनों प्रकार के रुक्नों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है।

कृति में समाहित ग़ज़लों के कलापक्ष पर इतना इंगित कर देना पर्याप्त है। कृतिकार छंद-

शास्त्र तथा अरूज के ज्ञान में स्वयं एक स्थापित व्यक्तित्व है, अतः संरचनागत विशेषताएँ उसकी रचनाओं में विपुलता से उपलब्ध हैं। रह गयी गजलियत तथा कथ्यात्मकता की बात, तो कृतिकार ने अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर वह सब कुछ विधिवत उकेरा है, जो आज के समय की माँग है। कृति की ग़ज़लों में प्रस्तुत किये गए अशआर आज के परिवेश पर बहुत कुछ बोलते हैं। उनमें अकाट्य तार्किकता है, कटाक्ष है, तंज है, और तेवर भी है शे'रों में तगज्जल ला देने वाली खूबियाँ हैं, शोजोगुदाज की पैठ है, अंदाजे बयाँ का बांकपन है, और प्रभावी ढंग से सब कुछ कर दिखाने का दम भी है चंद अशआर देखना उचित होगा -

कृति की ग़ज़लों से ऐसा भान होता है कि शुरूआती दौर की रूमानी और रूहानी ग़ज़लें आज किस कदर अपना रुख बदल चुकी हैं। अब वे देश-काल गा रही हैं; रिश्ते-नाते गा रही हैं; जमाने के दर्द गा रही हैं; रीति, नीति, भय, संत्रास गा रही हैं; गति, दुर्गति, गुत्थियाँ, उलझनें गा रही हैं और न जाने क्या-क्या गा रही हैं। उनमें प्यार की जगह सरोकार ने ले ली है। आज की ग़ज़लें जो नक्शा खींच रही हैं, उसमें गुजरने वाला जर्रा-जर्रा समाया हुआ है सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन ग़ज़लों में मिजाज ने जो अदाकारी दिखायी है, वह बेहतरीन ही नहीं, बुनियादी सीख देने वाली भी है। ग़ज़लों का बाहरी ढाँचा तो उम्दा है ही, उनमें भीतरी हलचल भी बड़े काम की है। उनमें नाद है, सौन्दर्य है, साथ ही तासीर लाने वाली अंतर्ध्वनि की उपस्थिति भी है। ग़ज़लकार ने अपने अशआर में मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा स्थापित तथ्यों का इस्तेमाल कर कथन में पुष्टता डाली है। उसने अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से लक्ष्यक व व्यंजक बिम्ब भी डाले हैं। इस निस्बत एक-दो शे'र देखिए-

वो भी दिन थे, जब जीवन में पुरवा बहती थी
पर अब दिल में हर पल एक बवंडर दिखता है
माँ की ममता, त्याग, तपस्या कौन समझ पाया है जग में
अपनों के हित हर पल खुद को रस्सी-जैसी वह बटती है
राम की तरह ही वो वन को है चला गया
राह देखते हैं हम अब भी राम-राज की

पूरे तौर पर, पेश की गयी ग़ज़ल-कृति निराली और प्रभविष्णु है। हर ग़ज़ल की बह्र निर्देशित कर देना एक श्रम-साध्य कार्य है इस कारण यह मात्र ग़ज़ल-संग्रह नहीं, अपितु ग़ज़लकारों के लिए लक्षण-निर्देशिका भी है इसे हिन्दी छंदों से जोड़ना अपने आप में एक शोध-कार्य है खडी बोली हिन्दी तथा सरल, बोलचाल की शब्दावली उदरस्थ किये इस कृति की भाषा प्रसाद एवं माधुर्य गुण से सम्पन्न है इस उत्तम व उपयोगी कृति के लिए डॉ. गौतम को हृदय से साधुवाद।

समीक्षक	:	रामदेव लाल 'विभोर'
पुस्तक	:	एक बह्र पर एक ग़ज़ल
रचनाकार	:	डॉ. ब्रह्मजीत गौतम
प्रकाशक	:	शलभ प्रकाशन, दिल्ली अमरुदाही बाग, आलमबाग
मूल्य	:	₹ 200

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • बिहार • झारखंड • प.बंगाल • पंजाब • हिमाचल • जम्मू-कश्मीर • महाराष्ट्र • गुजरात

कविकुंभ सदस्यता सहयोग राशि

वार्षिक ₹ 360	त्रय वार्षिक ₹ 1,100	पंच वार्षिक ₹ 2,100	आजीवन ₹ 10,000

* 'कविकुंभ' से संबंधित पत्राचार अथवा रचना सामग्री केवल 'यूनीकोड के मंगल फांट' में ही, कृपया इस ई-मेल पते पर अपेक्षित है - kavikumbh@gamail.com

* 'कविकुंभ' से संबंधित किसी भी तरह के संवाद के लिए मोबाइल नंबर 7983168101 / 7409969078 / 7250704688

कविकुंभ विज्ञापन मूल्य

आवरण अंतिम पृष्ठ रंगीन	₹ 1,00,000
आवरण पृष्ठ दो रंगीन	₹ 50,000
आंतरिक अन्य पूर्ण पृष्ठ रंगीन	₹ 35,000
आंतरिक अन्य अर्द्ध पृष्ठ रंगीन	₹ 20,000

शब्द आओ मेरे पास, जो बुलाएं जाओ उनके पास भी

'न्यूटन' राग : नागरजी गए सिनेमा हाल

इधर, एक नई फिल्म आई है 'न्यूटन'। भारत की ओर से ऑस्कर अवॉर्ड्स के लिए भेजे जाने की बड़ी चर्चा है। फिल्म नक्सल प्रभावित इलाके में कई वर्ष बाद चुनाव कराने जैसे विषय पर बनाई गई है। फिल्म में राजकुमार राव, पंकज त्रिपाठी, संजय मिश्रा, अंजली पाटिल जैसे कलाकार हैं। सभी कलाकारों की एक्टिंग की काफी तारीफ हो रही है। तारीफ आम लोग तो कर ही रहे हैं, कवि-साहित्यकार भी जब उस पर कुछ लिखने के लिए कलम उठा लें तो बात ज्यादा उल्लेखनीय हो जाती है। विष्णु नागर देश के प्रतिष्ठित कवि हैं और रामशरण जोशी जाने-माने पत्रकार। दोनो फिल्म देखकर खुश हैं। नागर जी अपने फेसबुक वॉल पर 'न्यूटन' देख आने की तार्किक खुशी साझा कर रहे हैं। पढ़ने वाले वितर्क कर रहे हैं। इसी बहाने विचारधारा के पक्ष-विपक्ष में बड़ी जोर की मरोड़ उठती है। बात-कुबात में हल्की सी ठन जाती है।

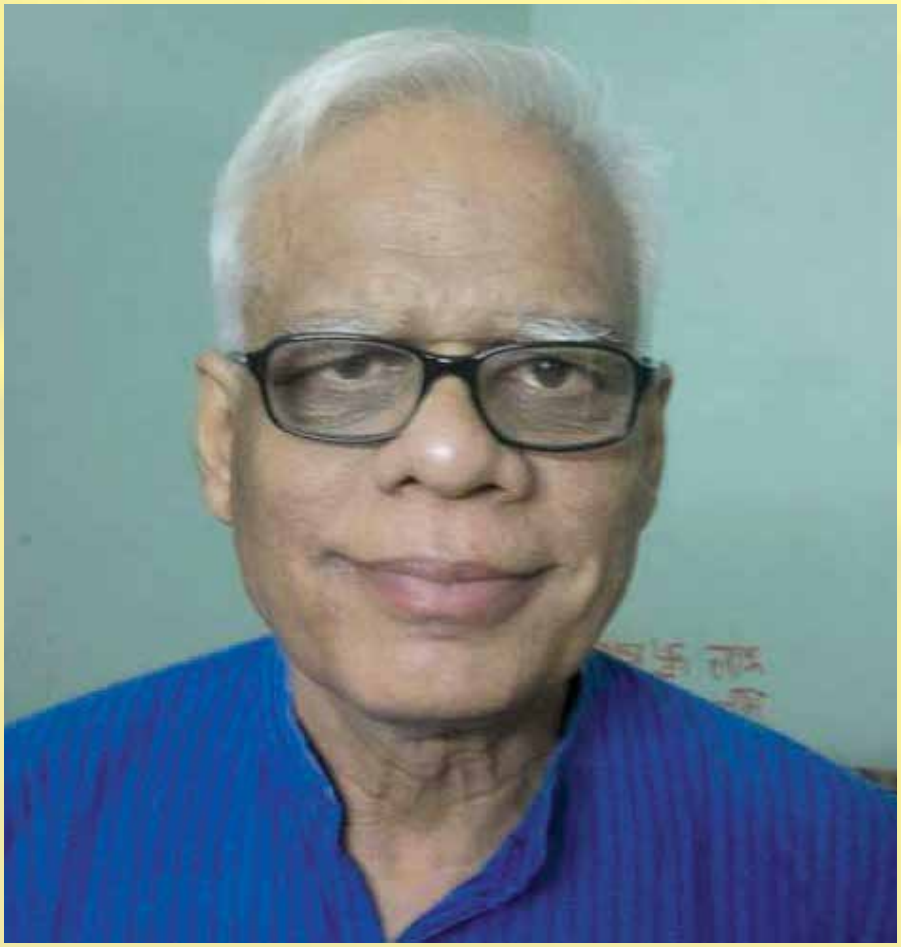

कवि-कथाकार विष्णु नागर लिखते हैं - 'आज मैं 'न्यूटन' फि ल्म देखकर आ रहा हूँ। यह फि ल्म काफी यथार्थवादी है, इतनी कि हमारा सामान्य दर्शक इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। थोड़ा ड्रामा भी है, हास्य भी इंटरवल से पहले है। यह फि ल्म नक्सल प्रभावित इलाकों में पुलिस-अर्धसैनिक बल चुनाव किस तरह फजी ढंग से कराते हैं, इसकी बानगी प्रस्तुत करती है। कनिष्ठ राजपत्रित अधिकारी, जो चुनाव का पीठासीन अधिकारी है, किस तरह इन सुरक्षा बलों की मजी के खिलाफ चुनाव अभियान संचालित करता है, इनसे शारीरिक मुठभेड़ तक करता है, यह काफी हद तक फि ल्मी और ड्रामाई है, इसके बावजूद निश्चित रूप से राजकुमार राव ने अपना काम पूरे और विश्वसनीय ढंग से और कौशल से किया है। और पात्रों ने भी, जिन्हें पंकज त्रिपाठी, रघुवीर यादव, संजय मिश्र आदि ने किया है, जिन्हें हिंदी का बेहतर सिनेमा देखने की इच्छा है, उन्हें यह जरूर देखनी चाहिए।

'वैसे दुर्भाग्य से शायद इसे महानगरों में ही देखा जा सकता है। कस्बों के सिनेमाघर तो शायद इसे लगाएं ही नहीं। दिल्ली में पहले ही हफ़्ते में जिस थियेटर में देखा, पचास-साठ दर्शक ही मौजूद थे। बर्लिन फि ल्म फेस्टिवल और हांगकांग फि ल्म

फेस्टिवल में पुरस्कृत होने के बावजूद यह हाल है। वैसे 90 लाख रुपये में बनी यह फि ल्म करीब सात करोड़ कमा चुकी है, इस अर्थ में यह कामयाब है। यह फि ल्म भारत सरकार की ओर से ऑस्कर के लिए नामांकित की गई है और यह भारत में देखने दी जा रही है, इसके बावजूद कि एक जगह मोदीजी की ओर इशारा करते हुए चायवाला को चायवाली बताया गया है। इस दौर में यह थोड़े आश्चर्य की बात है मगर यह आश्चर्य सुखद है। इसका श्रेय क्या सेंसर बोर्ड के नये अध्यक्ष प्रसून जोशी को दिया जाए?'

फिल्म जो देखन मैं चला.... तो नागरजी की इस पोस्ट पर रामशरण जोशी लिखते हैं कि सभी लोकतंत्र प्रेमियों को यह फिल्म जरूर देखनी चाहिए। बादल सरोज कहते हैं कि भोपाल आ जाइए। लगी है । आपकी हाजिरी का लाभ उठाकर कुछ और कार्यक्रम भी कर लेंगे। सूर्य कुशवाहा लिखते हैं कि प्रसून जोशी वाली बात पर संदेह है। जाहिरा तौर पर वह...पक्षधर माने जाते हैं। शायद उनकी निगाह चूक गयी होगी, या कोई और वजह हो सकती है। अनूप सेठी का कहना है कि प्रसून जोशी नहीं, एफएफआई, इसका पूरा नाम पता करना होगा।

एसके सिंह का मानना है कि पॉलिटीसियन को तो श्रेय बिल्कुल नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह तो कभी कैंची चलाने से बाज नहीं आएगा। सेंसर बोर्ड जिस में प्रसून जोशी एक अहम भूमिका निभा रहे हैं, ही इस सुखद परिवर्तन का सही हकदार हैं। रमाकांत यादव लिखते हैं कि जिस डायलाग की बात की जा रही है, वह अगर है तो हम इसे साहसिक सृजन ही कहेंगे। निमार्ता निर्देशक के साथ सेंसर बोर्ड की साहसिक दृष्टि की भी सराहना की जानी चाहिए।

पोस्ट पढ़कर प्रभात कुमार त्यागी गुस्सा हो जाते हैं। कहते हैं कि फिल्म बहुत शानदार है पर सामान्य दर्शक इसे क्यों बर्दाश्त नहीं कर सकते। यह कैसा अहम है कि आप अपने को असामान्य की श्रेणी में रख रहे हैं। बहुत पहले एक हास्य फिल्म 'प्यार किये जा' में महमूद मुमताज के पिता से एक डायलॉग बोलता है कि एक लड़की क्या पैदा कर ली, अपने को राजा भोज समझने लगे। वही बात यहाँ लग रही है कि चार किताबें क्या छपा लीं, अपने को सामान्य जन (जिसकी आप कसमें खाते हैं) से अलग एक विशिष्ट व्यक्ति समझने लगे। साहित्य में भी वीआईपी गिरी कर रहे हैं। इस खरी-खरी पर विष्णु नागर कहते हैं कि अरे त्यागी जी,आप यों ही बिगड़ रहे हैं। मैं भी सामान्य ही हूँ मगर जब दिल्ली में अक्सर अच्छी फिल्मों को दर्शक नहीं मिलते तो छोटे शहरों में दर्शक कहाँ मिलेंगे ?और हमारे दर्शक यथार्थ बहुत बर्दाश्त नहीं कर पाते।

अच्छी बात है कि किसी फिल्म को लेकर देश में मुद्दत बाद सार्थक गंभीर चर्चा हो रही है। कभी 'दामुल', 'आक्रोश' जैसी फिल्मों पर बातें हुआ करती थीं, उनका जनजीवन में हस्तक्षेप होता था। बीच के दौर में भी सामाजिक कुंठाओं की कलई खोलती और भी तमाम फिल्में आती रही हैं। अब, जबकि 'न्यूटन' जायज शोर मचा रही है, बात साफ हो जाती है कि सेंसर बोर्ड का दरिया लांघ कर जनता का दुख-दर्द साझा करने वाली फिल्में हमारे बीच आ सकती हैं, न आने की, लुंगी डांस दिखाने की वजहें कुछ और हैं। ये पूरा चरस अमिताभ-शहारुख टाइप बाजारवादियों का बोया हुआ है, जिसे नई पीढ़ी के कलाकार और निमार्ता-निर्देशक भी काटने में जुटे हुए हैं। एक दौर था जब कमर्शियल मसाला फिल्मों के साथ-साथ समानांतर सिनेमा का भी अपना दर्शक वर्ग था। श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, प्रकाश झा जैसे समर्थ निर्देशक थे। 'पार', 'भूमिका', 'अर्धसत्य' जैसी क्लासिक फिल्में बौद्धिक खुराक दिया करती थीं। दिए हैं। बाद के दौर में बाजार की मिलावट ने ऐसा सत्यानाश किया कि आज पूंजी भाषा में मीडिया हुंकारने लगता है, फलां फिल्म ने सौ करोड़ कमाए तो फलां फिल्म ने पांच सौ करोड़।

'न्यूटन' नए निर्देशक अमित मसूरकर की दूसरी फिल्म है, जो बरबस ही समानांतर सिनेमा के सुनहरे दौर को दिल-दिमाग पर ताजा कर रही है। 'न्यूटन' एक आदर्शवादी लड़के (राजकुमार राव) की कहानी है। उसका घर का नाम नूतन है। बदलकर वह अपना नाम न्यूटन रख लेता है। चुनाव के दौरान छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाके में उसकी ड्यूटी लगती है। नक्सलवाद से जूझते उस चुनाव क्षेत्र में गिने-चुने मतदाता होते हैं। न्यूटन के सामने निष्पक्ष मतदान की चुनौती है, जिसे साधते हुए वह हमारे समय की हकीकत पूरी तरह पर्दे पर खोल देता है। फिल्म में दूसरे समर्थ कलाकार रघुवीर यादव हैं। आदिवासी लड़की के रोल में अंजलि पाटिल की भी तारीफ हो रही है। (मूल अंश विष्णु नागर के एफबी वॉल से साभार)

जहीर तुमने शायर डॉ. नज्मी पर सच्चा लेख लिखा- पद्मा सचदेव

वरिष्ठ लेखिका पद्मश्री पद्मा सचदेव के मोबाइल कॉल का उल्लेख करते हुए भोपाल से ग़ज़लकार जहीर कुरेशी लिखते हैं - 'यद्यपि तबतक तक मुझे 'कवि कुंभ' का सितंबर 2017 अंक प्राप्त नहीं हुआ था, जिसमें प्रकाशित मेरे आलेख 'शायर डॉ. अख्तर नज्मी की विशेषता' और नज्मी साहब की चुनी हुई 9 ग़ज़लों के एवज मुझे अनेक मोबाइल कॉल्स आ चुके थे, 21 सितंबर की रात लगभग 9.40 पर मुझे एक मोबाइल कॉल आया- 'क्या मैं अख्तर साहब से बात कर रही हूँ?' मैंने कहा- 'नहीं।' फिर उसी स्वर ने कहा- 'मैं डोंगरी की कवयित्री पद्मा सचदेव बोल रही हूँ। क्या मेरी अख्तर नज्मी साहब से बात हो रही है?' अब तक मैं वस्तु स्थिति समझ चुका था, मैंने कहा- 'दीदी, मैं जहीर कुरेशी बोल रहा हूँ। मैंने ही डॉ. अख्तर नज्मी पर आलेख लिखा है। नज्मी साहब तो 20 साल पहले ही अल्लाह को प्यारे हो गए!' पद्मा जी बोलीं- 'सॉरी.... सॉरी जहीर, क्या तुम भी ग़ज़ल कहते हो?' मैंने कहा- 'जी, दीदी!' पद्मा जी बोलीं- 'तुमने किसी मरहूम शायर पर बेहतरीन और सच्चा लेख लिखा है। नज्मी साहब की ग़ज़लों का सिलेक्शन भी तुमने किया होगा। इतने अलग किस्म के.... रूह को छूने वाले शेर पढ़ कर मन खुश हो गया। रब तुम्हें लंबी उम्र दे!'

नवगीत पर जोर है पर नरेश सक्सेना की बात पर भी गौर करें - माधव

सुजानगढ़ (राजस्थान) से माधव नागदा लिखते हैं - 'कविकुम्भ का दसवाँ अंक प्राप्त हुआ। अभिभूत हूँ कि कविता को लेकर इस तरह की गंभीर पत्रिका भी निकल रही है। प्रस्तुत अंक का संयोजन दूरदर्शिता पूर्ण है। शायद पिछले अंक भी इसी गरिमा के साथ निकले होंगे। अनूप अशेष और नरेश सक्सेना के साक्षात्कार एक उपलब्धि की तरह हैं। बल्लीसिंह चीमा भी प्रभावित करते हैं। प्रेम जनमेजय के संस्मरण बहुत कुछ सिखाते हैं। शब्द-संवाद से लेकर शब्द-साधना तक सभी स्तम्भ बेहद पठनीय हैं। शब्द-सुमन स्तम्भ देखकर लगा कि आपका जोर नवगीत पर अधिक है। बेशक नवगीत का अपना सौन्दर्य है, अपनी छटा है, फिर भी नरेश सक्सेना जी की बात पर गौर करते हुए यदि आप कुछ मुक्त छंद की कविताएँ भी दिया करें तो उत्तम रहेगा।'

पढ़ा तो जाना, यूं ही नहीं हो रहीं तारीफें : अशोक अंजुम

अलीगढ़ (उ.प्र.) से 'अभिनव प्रयास' के सम्पादक एवं कवि अशोक अंजुम लिखते हैं - 'कविकुम्भ का सितम्बर अंक पाकर तबीयत खुश हो गयी। 'कविकुंम्भ' की तारीफ पिछले कई महीने से पढ़-सुन रहा था। देखा, तो जाना कि तारीफें यूँ ही नहीं हो रहीं। तमाम पत्रिकाओं से जुड़ा हूँ। दावे के साथ कह सकता हूँ कि कविता को समर्पित इतना सुन्दर, शिष्ट-विशिष्ट प्रकाशन अन्यत्र कहीं नहीं हो रहा। अनंत, आत्मीय बधाइयाँ स्वीकारिए। भगवन बुरी नजर से बचाए रखे। प्रस्तुत अंक में नवगीत का बोलबाला है। सर्वश्री अनूप अशेष, नरेश सक्सेना, बल्ली सिंह चीमा, प्रेम जनमेजय, डॉ अख्तर नज्मी, चंद्रकांत देवताले, राही मासूम रजा आदि पर विशेष सामग्री के साथ इनकी रचनाओं ने अंक को विशिष्ट बनाया है। जगदीश पंकज, जय चक्रवर्ती, रमेश गौतम के नवगीत भाये। साहित्यिक गतिविधियों के साथ ही पुस्तक समीक्षा को भी आपने स्थान दिया है, अच्छा लगा देखकर।'

पत्रिका को और-और बेहतर बनाने के जज्बे का मनोयोग - राम सेंगर

कटनी (मध्य प्रदेश) से शीर्ष नवगीतकार राम सेंगर लिखते हैं- 'कविकुंभ' का ताजा अंक मिला। पत्रिका में सामग्री का चयन और लेआउट बड़ी सूझबूझ के साथ पूरी तरह से जागरूक रह कर तैयार किया गया है। लगता है, पत्रिका के प्रकाशन-संचालन में पत्रकारिता का लम्बा-पुराना अनुभव यहाँ काम आ रहा है, क्योंकि पत्रिका आपकी अपनी है, इसलिये, उसे और-और बेहतर बनाने के जज्बे का मनोयोग यहाँ आपके संपादन-कौशल में, पूरे आत्मविश्वास के साथ उभर कर आया है। खुशी हमें भी खूब है। इसी तरह आपका यह मिशन सफलता की सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ता हुआ अपेक्षाओं के अभीष्ट तक पहुंचे, हमारी मंगलकामनाएँ। हमारी लम्बी प्रगीतात्मक कविता को आपने इतने सम्मान के साथ सहेज लिया, इसके लिए आभार शब्द बहुत छोटा पड़ रहा है।'

संपादकीय से पत्रिका की दृष्टि और दिशा पता चली - डॉ. सम्राट सुधा

रुड़की (उत्तराखंड) से कवि डॉ. सम्राट सुधा लिखते हैं- कविकुंभ का अगस्त, 2017 प्राप्त हुआ। बहुत समय बाद 'शब्द-संपादकीय' के रूप में एक ऐसा संपादकीय पढ़ने को मिला, जिसमें साहित्यिक सुगंध की अनुभूति हुई। संपादकीय से पत्रिका की 'दृष्टि-दिशा' पता चली, जिसका सशक्त प्रमाण पत्रिका की सामग्री में मिला। पत्रिका के नौवें अंक तक आते-आते पत्रिका के भावी स्वरूप पर विचार करना श्रेष्ठ है और इससे संपादकीय चिंतन सुस्पष्ट होता है। 'कविकुंभ' का नाम इसमें प्रकाशित सामग्री के परिप्रेक्ष्य में सार्थक है। स्तम्भ 'शब्दांकुर' का प्रारंभ एक उचित निर्णय है। गुमनाम साहित्यकारों पर संकेंद्रित लेखों, साथ-साथ अन्य के दुर्लभ साक्षात्कार प्रकाशित करना भी एक सुपठनीय नव स्तम्भ का हेतु है। पत्रिका का साहित्यिक चिंतन ही इसका बल है, कृपया बनाये रखें। शुभकामनाएं!

काव्य-साहित्य के लिए हमारे समय में 'कविकुंभ' बहुत जरूरी - भूपेंद्र कुमार

धामपुर (बिजनौर, उत्तर प्रदेश) से डॉ. भूपेंद्र कुमार लिखते हैं - 'कवि शंकर क्षेम के माध्यम से 'कविकुंभ' का दसवां अंक मिला। पढ़ कर बहुत अच्छा लगा। देश के शीर्ष कवि-साहित्यकारों, नवोदितों के शब्द एक साथ पढ़कर नई साहित्यिक ऊर्जा मिली। पत्रिका को पढ़कर अनायास स्वयं को भी शब्द-सृजन का प्रोत्साहन मिलता है। यह 'कविकुंभ' के सामग्री चयन और संपादन की कुशलता है। हमारे समय में ऐसी पत्रिका की बहुत जरूरत थी, जो पूरी हो रही। बड़ा ही सुखद लग रहा है।'

नरेश सक्सेना और बल्ली सिंह चीमा के इंटरव्यू महत्वपूर्ण- स्वप्निल श्रीवास्तव

फैजाबाद (उ.प्र.) से कवि स्वप्निल श्रीवास्तव लिखते हैं - 'कविकुम्भ का दसवां अंक मिला। इस अंक में नरेश सक्सेना का महत्वपूर्ण इंटरव्यू है। इसमें कथारस के साथ अपने समय की साहित्यिक गतिविधियों पर विस्तार से चर्चा की है। यह भी बताया है कि कवि राजधानियों और महानगरों में रहते हैं। इस देश में कई समर्थ भाषाएं हैं लेकिन सत्तर साल से कोई नोबुल प्राइज हिंदुस्तान में नही आया। जिस देश में 60 फीसदी लोग हिंदी भाषा बोलते हैं, वहाँ कविता संग्रह 300-500 की प्रतियों में प्रकाशित होते हैं। निरन्तर पाठकों की संख्या कम होती जा रही है। नरेशजी बहुत सारे प्रश्न सोचने के लिए छोड़ जाते हैं। चंद्रकांत देवताले ने हिंदी कविता के स्थापत्य को बदला है। कविता को नए विषय दिए हैं। उनकी कविताएं हमे बेचैन करती हैं। उनकी कविताओं में रोजमर्रा के तमाम दृश्य आते हैं। उनकी बच्चों वाली कविता को याद करिये। यह कविता उन बच्चों के बारे में है जिनका बचपन संघर्ष में बीत जाता है। स्कूल जाना उनके लिए महज सपना है। वे हमारे बीच से चले गए लेकिन हमारे जेहन में उनकी कविताएं दर्ज हैं। बल्ली सिंह चीमा अवाम के शायर हैं। उनकी धज ही अलग है। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को नए मुकाम तक पहुंचाया है। उनकी ग़ज़लें जुलूसों और संगठनों में गाई जाती हैं। वे क्रांतिकारी चेतना के ग़ज़लगो हैं। इसके अलावा इस अंक में अख्तर नजमी और अनूप अशेष पर बेहतर सामग्री है। इतने अच्छे अंक के लिए बधाई और शुभकामनाएं।'

मूल्यों के प्रति सजग करती हैं राम सेंगर और बुद्धिनाथ मिश्र की कविताएँ - जयप्रकाश

जबलपुर (म.प्र.) से नवगीतकार जयप्रकाश श्रीवास्तव लिखते हैं- 'अगस्त अंक कुछ देर से प्राप्त हुआ। 'कविकुंभ' के प्रति जो उत्सुक्ता थी, वह पूरी हुई। आपकी सहृदयता को नमन। आपने संपादकीय में जिस संकल्प का बीड़ा उठाया है कि नवांकुर और हाशिये पर स्थित सुयोग्य रचनाकारों को सामने लाना है तो यह 'कविकुंभ' के माध्यम से अवश्य पूरा होगा। शब्द-संवाद में हमारे साहित्य मनीषियों ने जिन आशंकाओं को सामने रखा है, वह निश्चय ही गंभीर हैं। आज बाजारवाद और व्यक्तिवादी सोच ने साहित्य को कहीं पीछे ढकेल दिया है। उसे पुनः स्थापित करने की महती चुनौती को हमें स्वीकारना ही होगा। 'कविता बोलती है', में राम सेंगर और बुद्धिनाथ मिश्र की कविताएँ शब्दों की दशा-दिशा और मूल्यों के प्रति सजग करती हैं। आ.माहेश्वर तिवारी के विषय में और अधिक जानने की लालसा बनी रहेगी। अंत में कविकुंभ के लिए मेरी शुभकामनाएं बधाई। पुनश्च--क्या प्रकाशक के पते पर एमो द्वारा अपना शुल्क भेज सकता हूँ मार्गदर्शन करें।'

'कविकुंभ' का आवरण मुखौटा नहीं, आमुख की तरह - पयोधि

भोपाल (म.प्र.) से कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि लिखते हैं - ' मासिक 'कविकुंभ' का दसवाँ अंक वरिष्ठ कवि मित्र अशोक निर्मल के सौजन्य से मिला। पत्रिका पहली नजर में ही भा गई। आवरण से अंतिम पृष्ठ तक सामग्री चयन, संयोजन, प्रस्तुति में संपादक का नजरिया, सरोकार और उद्देश्य स्पष्टता के साथ प्रकट होते हैं। पत्रिका का आवरण मुखौटा नहीं, आमुख की तरह है। 'शब्द-संवाद, 'शब्द-शिखर', 'शब्दांकुर', 'शब्द-साधना', 'शब्दाभास', 'शब्द-सुमन', 'शब्द-समारोह', 'शब्द-संस्थान', 'शब्द-सिनेमा', 'शब्द-संकलन' आदि स्तंभों में विभक्त पत्रिका उपयोगी लगी। 'शब्द-संपादकीय' से ध्येय और दृष्टि पता चली। 'शब्द-संवाद' में तीन दिग्गजों अनूप अशेष, नरेश सक्सेना और बल्ली सिंह चीमा से बेबाक बातचीत, 'शब्द-शिखर' में डा. अख़्तर नज्मी पर जहीर कुरैशी का लेख, 'शब्दांकुर' में ख्यात व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय का आत्मकथ्य, 'शब्दाभास' में नागार्जुन और देवांश पर विमर्श, 'शब्द-सुमन' में जगदीश पंकज, जय चक्रवर्ती, रमेश गौतम, मनोज जैन 'मधुर' और प्रीति समकित सुराना के नवगीत, 'शब्द-संस्थान' में 'दुष्यंत कुमार स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय' पर सामग्री सुपठनीय है। 'कविकुंभ' समय-सचेत, संपूर्ण पत्रिका है। यह हमें सुखद भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है।'

माहेश्वर तिवारी के विचारों से हम सहमत, नई ऊर्जा मिलेगी - शील

बिलासपुर (छत्तीसगढ़) से श्रीधर आचार्य शील लिखते हैं- 'कविकुंभ का अगस्त अंक मिला। बहुत-बहुत बधाई। शब्दानुक्रम के आठो पाठ बहुत अच्छे लगे। राम सेंगर, बुद्धिनाथ मिश्र की रचनाएं एवं चित्र संग्रहणीय हैं। माहेश्वर तिवारी के विचार- कविता सिर्फ वैचारिक प्रचार के लिये नहीं होनी चाहिए पर पूरी सहमति है। शंकर क्षेम, सुरेश अवस्थी, असगर वजाहत, डा. जीवन सिंह के विचारों से मुझे काव्य लेखन में नई उर्जा मिलेगी, विश्वास है। डा. शांति सुमन के नवगीत, रमेश गौतम के दोहों ने खूब प्रभावित किया। दिविक रमेश की बाल-कविताएं बचपन की याद दिलातीं हैं। कुल मिलाकर 'कविकुंभ' वास्तव में साहित्य का कुंभ है। सुन्दर मुद्रण, चित्रांकन, सामयिक चित्र उचित और आकर्षक लगे। सम्मानित रचनाकारों की रचना के अंत में यदि सम्पर्क-सूत्र होता तो और आनन्द आ जाता। अंत में कविकुंभ परिवार एवं इस अंक में छपे सभी रचनाकारों को हार्दिक बधाई।'

अगस्त अंक संग्रहणीय - डॉ. घनश्यामनाथ

सुजानगढ़ (राजस्थान) से डॉ. घनश्यामनाथ कच्छावा लिखते हैं - 'डाक से 'कविकुंभ' का अगस्त अंक मिला। सुंदर, आकर्षक और स्तरीय रचनाओं के कारण यह अंक संग्रहणीय बन पड़ा है। आपके प्रयासों के प्रति मुझे आश्चर्य मिश्रित खुशी है कि आप बहुत कम संसाधनों में बेहतरीन कार्य कर रहे हैं। मेरा हर संभव आपको सहयोग रहेगा। पत्रिका परिवार में मुझे शामिल करने के लिए आप का आभार।'